■ वर्ष 43, अंक 4, जून 2020 ■ मूल्य 20 रुपये

सामयिक वार्ता

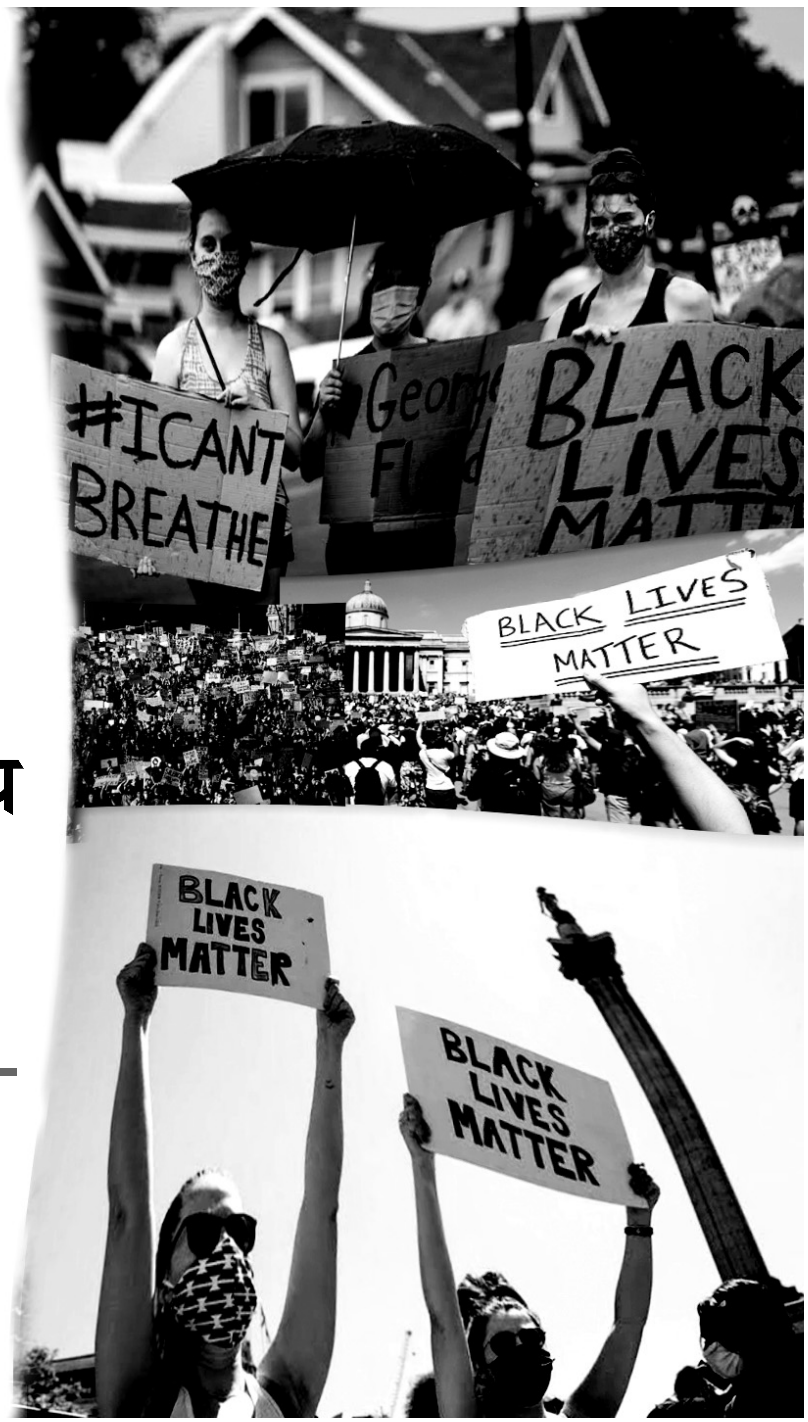

जार्ज फ्लॉयड की हत्या

के विरोध में अमेरिका-यूरोप में प्रदर्शन

वरिष्ठ समाजवादी साथी डॉ. स्वाति को श्रद्धांजलि

इकबाल अभिमन्यू की दो कविताएं

सपनों की खेती

रात सरकती है पलकों पे बेआवाज
बोल तैरते हैं हवा में बुलबुले
कविता मगर छिटक जा गिरती है दूर
हाथ लगाते ही यकायक
अँधेरा चेहरा छुपाने के काम आएगा
कसकर कम्बल सा लपेट लिए चलता हूं इसे
बेशुमार काम बाकी हैं
कल,
और आज को लंबा खींच
नींद के खिलाफ मोर्चा खोले
बुदबुदाता हूं
अनगढ़ तुकबन्दियां
मेरी आँखों के सामने से
गुजरते हैं अनगिनत सपने
देखे जाते कमरों में, छतों के नीचे,
फुटपाथ पर,
नए बने फ्लाईओवर की ओट में
देखे जाते चुपचाप सपने
जहां ऊपर गुजरती तुम्हारी
मुश्किल से जुबां पे आते नामों वाली
विदेशी कारें,
उनके पहिये भी न कुचल पाते वसंत की रातों में
तैरते सपनों को
(भले कुचला उन्होंने बार बार
देश के दोयम दर्जे के बाशिंदों को खुद)
रेल की पटरी के दोनों ओर
काली-नीली प्लास्टिक की झुग्गियों में से
मच्छरों की तरह भिनभिनाते बाहर आते सपने
रात में
जब दक्षिण दिल्ली की सड़कें,
मॉल, दुकानें, साउथ बॉम्बे, श्यामला हिल्स
या राजपथ-लुटियन की दिल्ली में भी
सपनों का प्रवेश निषेध नहीं करवाया जा सकता किसी
वर्दीधारी से,
वे निकल आते-नाचते गाते हैं सपने
फैल जाते इस देश के काले आकाश पर रात में
मैं पढ़ने की कोशिश करता हूं इन्हें
या छोड़ देता यूं ही
गुम अपने सपनों में ही
और खुद को सांत्वना देता
'पाश' को भी..
अभी सपने जिंदा हैं,
सपनों की सीढियां बढ़ रही हैं
आसमान की ओर धीरे-धीरे चुपचाप, दबे पांव
एक दिन सुबह होने पर भी वापस न उतरेंगे सपने
तब तक ढील दे रहा हूं मैं
अंधेरे में बैठा कमरे में
और गुनता बूझता खेलता
सपनों से ...

फिर उम्मीद उगाऊंगा

फिर उम्मीद उगाऊंगा
जड़ों से उखड़े लोग
भटकते फिरते हैं
तपती धरती पर
सालों का पसीना
गिरकर भाप बना
उगा गैरों के घर
आज आंखो पर
खुद मौत मंडराई है
धुंधलका घना
चहुंओर अतल गहराई है
लेकिन कसकर थामा है
सपनों से खाली गट्ठर ही
उम्मीद मिला करती है
अंधेरे कोनों में भी
आज मैं बेठौर सही
कल फिर जड़ों में खाद
जमाऊंगा
अपनी हरियाली साथ
लिए फिरता हूं,
बरखा आने दो,
मैं फिर उम्मीद जगाऊंगा।

जार्ज फ्लॉयड की हत्या : आज भी अधूरे हैं, मार्टिन लूथर किंग के सपने 08

तबाही, तूफान की या विकास की 10

कॉरपोरेट खेती के लिए बदले जा रहे कानून 12

कश्मीर : विवाद के बहत्तर साल 14

सस्ती सरकारी बिजली पर भारी मंहगी निजी बिजली 20

लोहिया का स्मरण मनुष्य मात्र का अर्चन-पूजन है 30

सामयिक वार्ता

जून 2020, वर्ष 43, अंक : 4

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

संपादक : अफलातून

संपादन सहयोग
प्रो. बलबीर जैन, अरविन्द मोहन, हरिमोहन, राजेन्द्र राजन, सत्येन्द्र रंजन, प्रियदर्शन, अरुण त्रिपाठी, प्रो. महेश विक्रम सिंह, लोलार्क द्विवेदी, संजय गौतम, चंचल मुखर्जी, कमल बनर्जी, संजय भारती

परामर्श मंडल
सच्चिदानंद सिन्हा, प्रो. कश्मीर उप्पल, स्मिता
रूप सज्जा : राम सिंह

कार्यालय : 20ए, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली–110091
ईमेल : varta3@gmail.com

सदस्यता शुल्क :

एक प्रति	:	20 रुपए
वार्षिक शुल्क	:	200 रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क	:	300 रुपए
छह साला शुल्क	:	1000 रुपए
आजीवन शुल्क	:	3000 रुपए

खाता नाम : सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा : सोनारपुरा, वाराणसी (उ.प्र.)
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या : 40170100005458
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहां दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं, S के बाद o (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
(इस खाते में पैसे जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना ई–मेल अथवा मोबाइल 08765811730/ 08004085923 पर दें।)

फ्लॉयड का नहीं, समाज का दम घुट रहा है

पिछले दो महीने में देश और दुनिया की हालत में बड़े बदलाव आए हैं। लग रहा है कि आगे की दुनिया का स्वरूप वही नहीं रह जाएगा, जो अब तक था। कोरोना महामारी से दुनिया त्रस्त है तो इसका ठीकरा फोड़ने के लिए सिर की तलाश चल रही है। अमेरिका में इसी दौरान छुपी हुई नस्लीय घृणा का चरम उभार देखने को मिला है। जार्ज फ्लॉयड की हत्या नस्लीय घृणा की आधुनिक युग में सबसे वीभत्स रूप में सामने आया है।

कोरोना संक्रमण और इससे लोगों की मौत की संख्या दुनिया भर में बढ़ती जा रही है। यूरोपीय देश, अमेरिका और चीन ने तो इस पर काफी हद तक नियंत्रण कर लिया है, लेकिन दक्षिण एशियाई देशों में, विशेषकर भारत में यह बेकाबू होता जा रहा है। राज्य सरकारों और केंद्र की सरकार द्वारा लगातार इसकी विभीषिका को कम करके बताने के बावजूद लोगों में इसका भय घर कर रहा है। मई के अंत तक संक्रमितों की संख्या बढ़ती ही रही है। दूसरी ओर इससे निपटने के उपाय के तहत देर से लागू किए गए लॉकडाउन बेअसर साबित हो चुके हैं। विशेषज्ञ इस साल के अंत तक इससे संक्रमितों की संख्या 10 या 50 करोड़ तक होने की आशंका जता रहे हैं। मृत्यु दर तीन प्रतिशत भी गिना जाए तो यह साल के अंत तक डेढ़ करोड़ मौतों की आशंका है।

हालांकि देश भर में और खासकर दिल्ली में मौतों के आंकड़े विभिन्न हथकंडे अपनाकर छुपाने की बात भी सामने आ रही है। मसलन, कोविड-19 के संक्रमण से घर पर मरने वाले अन्य बीमारियों के मरीज, बिना जांच के काल के गाल में समा गए लोगों की संख्या कोरोना मौत में नहीं गिनी जा रही है। राजधानी दिल्ली तक का यह हाल है कि यहां अस्पतालों में बेड नहीं है। लोकनायक जयप्रकाश अस्पताल में कोरोना के लिए बेड अलग भी किए गए हैं तो वहां की स्थिति नारकीय है। मरीजों और शवों को एक साथ ही रखा जा रहा है। उपचार की कोई न तो व्यवस्था है और न ही इसको लेकर प्रशासन से लेकर अस्पताल तक में कोई संवेदनशीलता। नतीजा है कि सुप्रीम कोर्ट से बार-बार फटकार खाने के बाद भी स्थिति वहीं ढाक के तीन पात हैं।

जब राष्ट्रीय राजधानी का यह हाल है तो देशभर के हालात के बारे में कल्पना की जा सकती है। महाराष्ट्र में इसके शिकार सर्वाधिक लोग हो रहे हैं। गुजरात, तमिलनाडु, पंजाब भी कहीं पीछे नहीं है। इस पर नियंत्रण के लिए सबसे सहज तरीका बड़ी संख्या में कंटेनमेंट जोन में जांच का हो सकता था, जो भारत सरकार या राज्य सरकारों के लिए दूर की कौड़ी साबित हो रही है। केवल बयानबाजी और आरोप-प्रत्यारोपों से काम चलाया जा रहा है।

इस स्थिति को देखकर पूरी सभ्यता की दिशा पर भी गंभीर सवाल खड़े हो रहे हैं। प्रवासी श्रमिकों का पूरे देश में सड़क पर आ जाना इस सवाल को पैदा करता है कि स्थानीय तौर पर रोजगार के सुलभ साधन अब तक क्यों नहीं ढूंढे गए। इस स्थिति का सटीक खुलासा समाजवादी चिंतक सच्चिदानंद सिन्हा द्वारा 1973 में प्रतिपादित आंतरिक उपनिवेश की अवधारणा पर आधारित दिख रहा है नस्लीय घृणा और आंतरिक उपनिवेश दोनों गैरबराबर संवृद्धि की देन हैं।

तथाकथित विकास के कुछ टापू लेकिन असलियत में संपन्न वर्गों की अय्याशियों लिए गढ़े गए कुछ कृत्रिम द्वीपों के कारण रोजगार, उद्योग सब दानवाकार मशीनों के हवाले किए गए और देश के बड़े भूभाग को ही श्रमबल और कच्चे माल के लिए उपनिवेश के तौर पर इस्तेमाल किया गया। इसका नतीजा भी कोरोना काल में उभर कर सामने आ गया है।

अब जरूरत है इस विकास के मॉडल और इसके विकल्प पर पुनर्विचार करने का। जिसमें उद्योगों का स्वरूप प्रकृतिगत, मानव श्रम पर आधारित, संवेदनशील और स्थानीय संसाधनों पर आधारित होना स्वीकार करना होगा। कोरोना जैसे और भी भयावह बीमारियां या संकट सामने आ सकते हैं, जिससे निपटने में मनुष्य असहाय हो जाए उससे पहले ही सचेत हो जाने की जरूरत है।

अमेरिका में नस्लीय हमले का वीभत्स रूप मिनेसोटा में जॉर्ज फ्लॉयड नाम के एक श्यामवर्णीय व्यक्ति की हत्या के तौर पर सामने आया है। अमेरिकी पुलिस द्वारा आमतौर पर निहत्थे विरोधियों को काबू करने के लिए उसे जमीन पर पटक कर चॉकहोल्ड दांव लगाया जाता है। श्वेत पुलिसकर्मी ने घुटनों तले जो दबाया वह सिर नहीं जॉर्ज की गरदन थी और उसे नस्लीय नफरत से दबाया गया। इसलिए इसका दबाव दुनियाभर के मानवाधिकार समर्थकों, लोकतंत्र और समता में विश्वास करने वाले समूहों द्वारा महसूस किया जा रहा है। दबी गरदन वाले जॉर्ज फ्लॉयड ने छटपटाते हुए कहा था- आई कांट ब्रीद -मेरा दम घुट रहा है। लेकिन श्वेतवादी पुलिस को तब तक सुकून नहीं मिला जब तक कि जॉर्ज का दम पूरी तरह घुट नहीं गया। नस्लीय हिंसा, घृणा दुनिया में सदियों से रही है। इसके शिकार भी एशिया, अफ्रीका के निवासी और अमेरिका के मूल निवासी होते रहे हैं। यह कोई नई बात नहीं है।

लेकिन हाल के इस घटना में जो प्रतिरोध का स्वर दुनिया भर में खासकर यूरोप, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में गुंजायमान हुआ है, वह मानवता के लिए आशा और उम्मीद

को और गहरा करता है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप में लाखों लाख, जो लोग इस नृशंस और इंगित हत्या के खिलाफ सड़कों पर उतरे हैं, उनमें बड़ी संख्या उन श्वेत लोगों की है, जिनके नाम पर एक नस्लवादी श्वेत द्वारा जार्ज की हत्या कर दी गई। अमेरिका में प्रदर्शनकारियों को अपने घर में शरण देने वाले बहुत से श्वेत समुदाय के लोग सामने आए जिन्होंने शासन का कोप सहकर भी इनकी मदद की है। यहां तक कि पूरे यूरोप और अमेरिका में सरकार की पुलिस प्रदर्शनकारी श्यामवर्णियों के समक्ष घुटने टेक कर माफी मांगने की मुद्रा में आ गई है। इससे भी बढ़कर एक वाकया इंग्लैंड में देखने को आया। यूरोप और अमेरिका में कई श्वेत नस्लवादी समूह भी अपनी नस्लीय श्रेष्ठता के पक्ष में सड़कों पर आ गए हैं। इनमें से एक श्वेतवादी प्रदर्शनकारी जब असहाय होकर सड़क पर गिर जाता है तो श्यामवर्णीय आंदोलनकारी ही उसका सहारा बनते हैं और उठाकर उसे अस्पताल पहुंचाते हैं। यह सही है कि यूरोप ने दुनियाभर में लूट और उपनिवेश स्थापित कर अपनी संपन्नता को बढ़ाया। लेकिन यह भी सही है कि पश्चिमी दुनिया ने अपने समाज से उतनी ही तेजी और जज्बे से विषमता को खत्म भी किया। तभी तो वह दुनिया पर राज करने के लिए बढ़ सका।

ये घटनाएं निराशा के बीच आशा का संचार करती हैं। लेकिन यूरोप और अमेरिका में ही क्यों? क्या हम एशिया, दक्षिण एशिया और उससे भी आगे बढ़कर भारत में इसकी कल्पना क्यों नहीं कर सकते। इसका कारण खोजना बाकी है। कारण अगर है भी तो मन के हजार तहखाने के अंदर छुपा हुआ है, जिसे हमारा समाज बाहर नहीं आने देता है। क्या जिन प्रतिरोधों और विरोधियों को भी अपना स्थान देने, उनके मत का सम्मान करने के जो उदाहरण ऊपर दिए गए हैं, उनकी यहां कल्पना भी की जा सकती है? क्या हमारी सरकारें, हमारी पुलिस और हमारा समाज अपने ही समाज के दबे-कुचले वर्गों के सामने उस तरह का पश्चाताप करने की मुद्रा में है जैसा कभी गांधी ने किया और करने की बात की थी?

अगर नहीं तो हम किस लोकतंत्र, कानून के राज और समता, स्वतंत्रता और विश्व बंधुत्व की बात करते हैं? हमारे भारतीय और व्यापकता में देखें तो एशियाई समाज को इसका जवाब खोजना बाकी है। इस पर चलने की योग्यता हासिल करना बाकी है। हम गोरख पांडेय की इन कुछ पंक्तियो के साथ यह मुद्दा पाठकों के हवाले करते हैं।

हजार साल पुराना है उनका गुस्सा/ हजार साल पुरानी है उनकी नफरत/ मैं तो सिर्फ/ उनके बिखरे हुए शब्दों को/ लय और तुक के साथ लौटा रहा हूं/ मगर तुम्हें डर है कि/ आग भड़का रहा हूं। ■

नीचे दी गई पंक्तियां 46 वर्षीय जॉर्ज फ्लॉयड के अंतिम शब्द हैं। फ्लायड अमेरिकी पुलिस अधिकारी के हाथो मारे गए। पुलिस अधिकारी ने उन्हें लगभग नौ मिनट तक गर्दन पर चॉकहोल्ड लगाया, जिससे चिल्लाते और रहम की भीख मांगते हुए उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

'यह मेरा चेहरा है श्रीमान
मैंने कुछ भी गलत नहीं किया श्रीमान
मेहरबानी कीजिए
मेहरबानी कीजिए
मेहरबानी, मेरा दम घुट रहा है
मेहरबानी कीजिए महोदय
अरे कोई है
मेहरबानी कीजिए श्रीमान
मेरा दम घुट रहा है
मेरा दम घुट रहा है
मेहरबानी करें
(डूबती आवाज में)
श्रीमान, मैं साँस नहीं ले पा रहा हूं, मेरा चेहरा
बस उठ जाने दें
मैं सांस नहीं ले पा रहा
दबा है, मेरी गर्दन पर घुटना
मेरा दम घुट रहा है
ओह
मैं सांस लूंगा
मैं हिल नहीं सकता
मां
मां
मैं कुछ नहीं कर सकता
मेरा घुटना
मेरी गर्दन
मैं मर रहा हूं
मैं मर रहा हूं
मैं बहुत कष्ट में हूं
मेरे पेट में दर्द है
मेरी गर्दन दुख रही है
बहुत दर्द हो रहा है
कोई पानी दो कुछ करो
मेहरबानी कीजिए
मेहरबानी
मैं दम घुट रहा है हुजूर
मुझे मत मारिए
ये मुझे मार डालेंगे, यार
कोई बचाओ
मेरा दम घुट रहा है
मेरा दम घुट रहा है
ये मुझे मार रहे हैं
ये मुझे मार रहे हैं
मेरा दम घुट रहा है
मेरा दम घुट रहा है
मेहरबानी कीजिए श्रीमान
मेहरबानी
मेहरबानी
ओह मेरा दम घुट रहा है'

फिर उसकी आँखें बंद हो जाती हैं और आवाज भी बंद हो जाती हैं। जॉर्ज फ्लॉयड को कुछ समय बाद ही मृत घोषित कर दिया गया।

लॉकडाउन : आंतरिक उपनिवेश की नई व्यथा

पिछले 70 वर्षों में नीतियों के मामले में बहुत ही उलट-फेर हुए हैं। पर यह दो मामले इसके अपवाद हैं- आंतरिक उपनिवेशवाद (आर्थिक ध्रुवीकरण) और निचले वर्गों की सामाजिक सुरक्षा की अनदेखी। इन मामलों में नीतियों में असाधारण तौर पर निरंतरता बरकरार है। वर्तमान संदर्भ भारत में कोरोना महामारी को रोकने के लिए दो माह से भी लंबा लॉकडाउन है, जिसकी नाकामयाबी के दो प्रमुख कारण यही है।

लगभग एक ही वक्त भारत, जर्मनी, इटली, स्पेन, ब्रिटेन आदि देशों ने कोरोना के फैलाव पर नियंत्रण करने के लिए लॉकडाउन लागू किया था। भारत को छोड़कर बाकी सभी देश संक्रमण वृद्धि (कर्व) को नियंत्रित (फ्लैट) करने में कामयाब हो गए हैं जबकि लॉकडाउन के 68 दिन बाद भी भारत में संक्रमण प्रति दिन तकरीबन 5 फीसदी की रफ्तार से बढ़ता ही जा रहा है और इसके फैलाव की रफ्तार धीमी होने के लक्षण दिख नहीं रहे हैं।

25 मार्च को कोरोना के कुल मामले 667 थे, 31 मई को यह तादाद बढ़कर 1,82,143 हो गई है। देश में इतने कठोर लॉक-डाउन के बाद भी मामलों की तादाद 1.82 लाख तक पहुंचना ताज्जुब की बात है। मौजूदा रफ्तार से इनकी तादाद हर 14 दिन में दोगुना होती जाएगी। 21 जून तक संक्रमितों की संख्या 4,10,500 और मृतकों की संख्या 13,254 तक पहुंच गई थी।

इस वक्त दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों में कोरोना मरीजों के लिए उपयुक्त चिकित्सा सेवाओं की व्यवस्था करने में दिक्कतें आना शुरू हो गई है। अगर संक्रमण की रफ्तार नियंत्रित नहीं की गई तो हालात बेकाबू हो सकते हैं।

संक्रमण पर नियत्रंण करने के लिए लॉकडाउन एक आजमाया हुआ तरीका है। तो फिर भारत में यह नाकामयाब क्यों है? लॉक-डाउन की कामयाबी की एक बुनियादी शर्त है- रोजी, रोटी से वंचित मजदूरों और उनके परिवारों की समुचित सामाजिक सुरक्षा। सभी यूरोपीय देशों और अमेरिका में संस्थागत तरीकों से सभी बेरोजगारों को तयशुदा भत्ते की अदायगी से सभी के भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था हो जाने से लॉकडाउन को इन देशों में काफी हद तक कार्यान्वित किया जा सका था। इस तरह एक स्वीकार्य अवधि में ही इन देशों में संक्रमण का ग्राफ उछाल लेने की जगह सीधी रेखा में चलने लगा है।

दूसरी तरफ भारत में बेरोजगारी भत्ते की कोई व्यवस्था नहीं है। संगठित क्षेत्र के मजदूरों ने भविष्य निधि कोष में अपनी जमा राशि की निकासी से किसी तरह अपने परिवार के भरण-पोषण की व्यवस्था की है। पर ज्यादातर मजदूर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है और उनके पास यह सुविधा नहीं है।

भारत की जनता ने, खासकर गरीब ने लॉकडाउन के कष्ट पिछले दस हफ्ते से झेले हैं फिर भी संक्रमण का प्रसार कम क्यों नहीं हो पा रहा? इसका उत्तर स्पष्ट है। प्रभावी लॉकडाउन के लिए समुचित सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था अनिवार्य है। पर देश के नीतिकार इस मामले में शुरू से ही बेपरवाह रहे हैं।

25 मार्च से 31 मई तक के 68 दिनों के दौरान संक्रमण की प्रवृत्ति (ट्राजेक्टरी) को देखने से इस मामले में की गई लापरवाही का अनुमान लगाया जा सकता है। चहुंओर से सरंक्षित बंगलों (आइवरी टॉवर) में बैठे हुए नीतिकार शुरू के 4-5 हफ्तों तक तो बहुत आश्वस्त थे और देश में तेजी से बदल रहे घटनाक्रम से बिल्कुल बेपरवाह भी थे। तभी तो उन्होंने लॉकडाउन के शुरुआती 4 हफ्तों के आंकड़ों के आधार पर 15 मई तक कोरोना पर पूर्ण नियंत्रण का पूर्वानुमान भी पेश कर दिया था। गौरतलब है कि 20 अप्रैल को मामलों की तादाद 18,453 थी। यह तादाद ज्यादा चिंताजनक नहीं थी। क्योंकि कोरोना संक्रमण और इसके लक्षण प्रकट होने में ज्यादा से ज्यादा 14 दिन लगते हैं और 28 दिन में इसके संक्रमण की दो पीढ़ी (इन्क्युबेशन पीरियड) गुजर जाने के संक्रमण का आगे प्रसार रूक जाना चाहिए।

उपरोक्त चारों देशों में लॉकडाउन के दौरान भारत के मुकाबले ज्यादा रियायतें दी गई थीं। मसलन, इन देशों में एक शहर से दूसरे शहर जाने की छूट थी, जबकि भारत में इस पर बंदिश थी। फिर भी इन देशों में 40-50 दिनों में संक्रमण का प्रसार रुक सा गया है।

नीतिकारों ने प्रवासी श्रमिकों की दिक्कतों को अनदेखा करके लॉकडाउन को फ्लाप शो बना दिया है। गौरतलब है कि लॉकडाउन लगने के तीन-चार दिन बाद से ही बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिकों ने जगह-जगह से अपने गांव और कस्बों (अपने मूल निवास स्थान) की तरफ पलायन शुरू कर दिया। रेल और बसें बंद होने के कारण उन्होंने पैदल ही चलना जारी रखा। मजबूरन सरकार को उनके लिए रेलों और बसों की व्यवस्था करनी पड़ी। दो माह से देश के कई हिस्सों में प्रवासी श्रमिकों के बेबस हालात के कारण अफरातफरी फैली हुई है और इससे सामाजिक या शारीरिक दूरी बनाए रखने का असली मुद्दा गौण हो गया है। लॉकडाउन के दस हफ्ते बीत जाने के बाद भी संक्रमण वक्र समतल न होकर घातांकीय वृद्धि (एक्सपोनेंशियल ग्रोथ) के भयावह मंजर को इंगित कर रहा है। घातांकीय वृद्धि में संख्या 10, 20, 40, 80,160, 320, 640, 1280, 2560, 5120, 10240, की रफ्तार से बढ़ती है जबकि समतल वक्र की स्थिति में संख्या अपने चरम स्तर पर पहुंचने के बाद निरंतर घटती जाती है।

क्या इसका कारण प्रवासी श्रमिकों के प्रति नीतिकारों की आंतरिक उपनिवेशवादी मानसिकता से उपजी बेपरवाही नहीं है? समाजवादी चिंतक सच्चिदानंद सिन्हा ने 1973 में प्रकाशित अपनी बहुचर्चित पुस्तक इंटरनल कॉलोनी में आंतरिक उपनिवेश की अवधारणा को प्रतिपादित किया था, जो आज भी प्रासांगिक है। ■

कोरोना महामारी : जांच का विकल्प नहीं है

कोरोना एक अति संक्रमाणक रोग है। संक्रमित की पहचान जांच रिपोर्ट के पॉजिटिव पाए जाने पर की जाती है। रोगी दोनों लक्षणात्मक अथवा गैर-लक्षणात्मक श्रेणी के हो सकते हैं। रोग व्यक्तिगत संपर्क से फैलता है और इस तरह कोरोना मरीज के संपर्क में आने वाले सभी व्यक्ति शक के दायरे में आ जाते हैं। इस रोग का इन्क्युबेशन (रोग से आक्रांत होने की अवधि) ज्यादा से ज्यादा 14 दिन तक होता है; इस अवधि के दौरान अगर जांच रिपोर्ट निगेटिव आती है तो व्यक्ति संक्रमण से बच जाता है। अन्यथा रोग की पुष्टि हो जाती है। इस तरह रोगी की पहचान के लिए जांच एक अनिवार्य कदम है।

जांच से पूर्व संक्रमण के शक के दायरे में आने वाले सभी व्यक्तियों को खोजकर उन्हें क्वारंटाइन करने या अलग-थलग रखने की व्यवस्था की जाती है। 14 दिन के दौरान जांच के परिणाम की पड़ताल की जाती है। भारत में 25 मार्च के लॉक-डाउन की सफलता का दारोमदार काफी हद तक इस प्रक्रिया से जुड़ा था। एक तरफ लॉकडाउन के दौरान सामाजिक सुरक्षा की समुचित व्यवस्था न होने से प्रवासी श्रमिकों का अपने मूल निवास की तरफ पलायन करने से सामाजिक दूरी को बनाए रखने पर नकारात्मक असर पड़ा है तो दूसरी तरफ क्वारंटाइन और जांच की लचर व्यवस्था से संक्रमण के प्रसार पर अंकुश नहीं लग पाया है।

मौजूदा संकट से उबरने का एक ही तरीका है। ज्यादा से ज्यादा जांच की फौरन व्यवस्था की जाए। 25 मार्च को लॉकडाउन के साथ ही जांच की व्यापक व्यवस्था की तैयारी शुरू हो जानी चाहिए थी। पिछले तीन दशकों में सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की पूरी तरह उपेक्षा की गई है और उसकी जगह निजी अस्पतालों की हर कोण से मदद की गई है। इस माहौल में जांच की आपूर्ति के लिए देश की अधिसंख्य जनता को निजी अस्पतालों और जांच केंद्रों की तरफ ही देखना पड़ रहा है। इन केंद्रों में जांच फीस 4500 रुपये निर्धारित की गई है और यह फीस देश की अधिसंख्य जनता की पहुंच के बाहर है।

इस अनुपयोगी व्यवस्था के कारण देश में जांच की संख्या अन्य देशों के मुकाबले बहुत कम है। मई के अंतिम सप्ताह तक भारत में एक लाख की आबादी पर 278 जांच हुए है। इसका खतरनाक नतीजा सामने है- 25 मार्च को कोरोना के कुल मामले 667 थे, 21 जून तक संक्रमितों की संख्या 4,10,500 हो गई है। कोरोना संक्रमण वक्र (वृद्धि दर में तेज उछाल) को समतल (वृद्धि दर में गिरावट) करने में सफल देशों में जांच की औसत संख्या 5500 से 8500 प्रति लाख के बीच है।

निजी अस्पतालों और प्रयोगशालाओं पर निर्भर जांच व्यवस्था देश की अधिसंख्य जनता के लिए अनुपयोगी है और सरकारी व्यवस्था अपर्याप्त हैं। इसका अहसास सरकार को काफी देर बाद हुआ लगता है। मई के अंतिम सप्ताह में जांच की क्षमता प्रति सप्ताह एक लाख के करीब हासिल कर ली गई है। पर देश की जरूरतों की अनुपात में यह बहुत कम है। अमेरिका ने मई के अंतिम सप्ताह में तीन लाख सत्तर हजार और रूस ने दो लाख सत्तर हजार जांच किए थे। भारत की आबादी इनसे तीन गुना से भी ज्यादा है। इससे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि जांच की जरूरतों और क्षमता में अभी भी बहुत बड़ा फासला है, जिसे जल्दी से जल्दी पाटना जरूरी है। ■

जार्ज फ्लॉयड की हत्या : आज भी अधूरे हैं, मार्टिन लूथर किंग के सपने

लज्जाशंकर हरदेनिया

दुनिया के सर्वाधिक सम्पन्न और लोकतांत्रिक कहे जाने वाले देश अमेरिका में वहां के अश्वेत नागरिकों के साथ जैसा व्यवहार हो रहा है, उसकी एक बानगी अभी डेढ़ हफ्ते पहले अमेरिकी शहर मिनियोपोलिस में देखने को मिली। वहां एक आम अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिक जार्ज फ्लॉयड को एक दुकान में उस मामूली चोरी के अपराध में दबोच कर मार दिया गया जो उसने 'कोविड-19' के चलते लगे लॉकडाउन में भूख के कारण की थी। इस दुर्घटना के विरोध में अमेरिका के करीब 40 शहरों में प्रदर्शन, धरना और आंदोलन जारी हैं। कहा जा रहा है कि यह देशव्यापी विरोध-प्रदर्शन अफ्रीकी मूल के नागरिकों के आंदोलनों की याद दिला रहा है। प्रस्तुत है, साठ के दशक के इस

अभी 25 मई 2020 को पुलिसकर्मी ने जिस क्रूर तरीके से अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिक जार्ज फ्लॉयड को मारा है, उससे लगता है कि अमेरिका के अश्वेतों को आज भी पुलिस के जुल्मों से मुक्ति नहीं मिली है।

आंदोलन में उसके नेता मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) के ऐतिहासिक भाषण पर आधारित यह लेख।

अभी 25 मई 2020 को पुलिसकर्मी ने जिस क्रूर तरीके से अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिक जार्ज फ्लॉयड को मारा है, उससे लगता है कि अमेरिका के अश्वेतों को आज भी पुलिस के जुल्मों से मुक्ति नहीं मिली है। इस समय अमेरिका में जो व्यवहार अश्वेतों के साथ हो रहा है, उससे लगता है कि करीब छह दशक बाद, 1963 के विशाल प्रदर्शन के बाद से आज तक अश्वेतों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

वर्ष 1963 में अगस्त 29 को अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में इसी तरह के मुद्दों को लेकर एक बड़ा प्रदर्शन हुआ था। प्रदर्शन का नेतृत्व मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) कर रहे थे। प्रदर्शनकारियों की मांग थी 'हमें सम्मान और काम चाहिए।' इस प्रदर्शन में दो लाख लोग शामिल हुए थे। प्रदर्शनकारियों में अश्वेत और श्वेत दोनों शामिल थे। अश्वेत 90 प्रतिशत और श्वेत 10 प्रतिशत थे।

प्रदर्शनकारियों को संबोधित करते हुए मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने जो भाषण दिया था, उसे बीसवीं सदी में दिए गए ऐतिहासिक भाषणों में शामिल किया गया है। 20वीं सदी के ऐतिहासिक भाषणों का संग्रह ब्रिटेन के प्रभावशाली दैनिक 'मेनचेस्टर गार्जियन' ने प्रकाशित किया है। इस संग्रह में अन्य लोगों के अलावा भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का भाषण भी शामिल है। मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने अपने भाषण में अश्वेतों अर्थात नीग्रो लोगों की आर्थिक एवं राजनीतिक दुर्दशा की चर्चा की थी।

मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने अपने भाषण में बार-बार कहा था 'आई हैव ए ड्रीम' अर्थात मेरा एक सपना है। अपने भाषण के प्रारंभ में उन्होंने कहा था कि 'हम से पूछा जा रहा है कि इतनी बड़ी संख्या में तुम वाशिंगटन क्यों आए हो। हमसे पूछा जा रहा है कि तुम कब संतुष्ट होगे। हमारा उत्तर है, हम उस दिन संतुष्ट होंगे जब हमें पुलिस की ज्ञात और अज्ञात ज्यादतियों से मुक्ति मिलेगी।'

मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने आगे कहा था कि 'हम उस दिन संतुष्ट होंगे जब प्रत्येक स्थान पर यह चेतावनी कि 'यह स्थान सिर्फ श्वेतों के लिए है' हटा दी जाएगी। मुझे ज्ञात है कि आप किन मुसीबतों का सामना करते हुए यहां आए हैं। आप में से कई सीधे जेल से यहां आए हैं। 'मार्टिन लूथर किंग ने कहा कि मेरा सपना है कि वह दिन जरूर आएगा जब पूर्व के गुलाम और गुलामों के मालिकों की संतानें एक साथ, एक ही टेबिल पर बैठकर खाएंगे। मेरा सपना है कि वे सारे स्थान जहां अन्याय व्याप्त है आजादी और न्याय के स्थल बन जाएंगे। मेरा सपना है कि मेरे चारों बच्चे उनकी चमड़ी के रंग से नहीं वरन् उनकी प्रतिभा और चरित्र से जाने जाएंगे। मेरा सपना है कि अलबामा में अश्वेत और श्वेत बच्चे हाथ में हाथ डालकर पढ़ेंगे और खेलेंगे।

'मेरा सपना है कि हमारे बीच का भेदभाव एक दिन मधुर संगीत में बदल जाएगा। मेरा सपना है कि वह दिन शीघ्र आएगा जब हम मिलकर काम करेंगे, जब हम मिलकर प्रार्थना करेंगे, जब हम मिलकर संघर्ष करेंगे, जब हम मिलकर जेल जाएंगे, आजादी और स्वतंत्रता के लिए मिलकर मैदानी लड़ाई लड़ेंगे। मेरा सपना है कि हम मिलकर गाएंगे कि हमारा यह देश और महान बने, मेरा सपना है कि पूरे देश के हर कोने से आजादी की हवाएं बहें और सबका बराबर से स्पर्श करें। मेरा सपना है कि हर गांव, हर झोपड़े से आजादी के गीत सुनाई दें और अमेरिका का प्रत्येक नागरिक, ईश्वर की हर संतान-श्वेत, अश्वेत, यहूदी, कैथोलिक, प्रोटेस्टेंटः हाथ-में-हाथ डालकर चलें और प्राचीन नीग्रो गीत गाए 'फ्री एट लास्ट, फ्री एट लास्ट, थैंक गॉड आलमायटी, वी आर फ्री एट लास्ट।'

आज अमेरिका में जो कुछ हो रहा है उससे ऐसा लगता है कि मार्टिन लूथर किंग के सभी सपने अधूरे हैं। आज अमेरिकी राष्ट्रपति यह कहता है कि यदि प्रदर्शनकारी 'व्हाइट हाउस' के और पास आएंगे तो मैं उन पर खूंखार कुत्ते छोड़ दूंगा। वह धमकी देता है कि यदि प्रदर्शनकारी शांत नहीं हुए तो मैं सेना भेजूंगा, जो अपने गवर्नरों से कहता है कि तुम मूर्ख हो, तुम क्यों प्रदर्शनकारियों पर नियंत्रण नहीं कर पा रहे हो।

प्रदर्शनकारियों के समर्थन में लंदन, पेरिस, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप के अन्य देशों में प्रदर्शन हो रहे हैं। अमेरिका के ही पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा उनका समर्थन कर रहे हैं। ओबामा ने उन प्रदर्शनकारियों की निंदा की है, जो तोड़फोड़, लूटपाट और हिंसा कर रहे हैं।

हम भारत में क्या कर रहे हैं, यह सोचने की बात है। अश्वेतों के हितों की लड़ाई लड़ते हुए सन् 1968 में मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) की हत्या कर दी गई थी। अश्वेतों के अधिकारों के लिए अभियान चलाने के पहले वे भारत आए थे- यह जानने के लिए कि अहिंसक आंदोलन कैसे संचालित होते हैं। भारत प्रवास के दौरान उन्होंने महात्मा गांधी की कार्यप्रणाली को समझा था। ■

कुमार प्रशांत

तबाही, तूफान की या विकास की

डेढ़-दो हफ्तों के अंतराल से देश के पूर्वी (पश्चिम बंगाल, ओड़िशा) और पश्चिमी (महाराष्ट्र, गुजरात) तटों पर आए चक्रवाती तूफान, क्रमशः 'अम्फान' और 'निसर्ग' ने एक बार फिर हमारे सर्वाधिक विवादित विकास को चर्चा में ला दिया है। वैज्ञानिक बार-बार चेतावनी दे रहे हैं कि मौजूदा विकास के चलते कार्बन उत्सर्जन बढ़ा है और नतीजे में जलवायु-परिवर्तन ने समूचे सौरमंडल का प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ दिया है। सवाल है, क्यों हम अब भी कुछ सीखने, बदलने को तैयार होंगे? प्रस्तुत है, इसी मसले का खुलासा करता कुमार प्रशांत का यह लेख।

तब 'अम्फान' आकर गुजर गया था, अब 'निसर्ग' आकर गुजर गया है। राहत की आवाज सुनाई दे रही है कि चलो, गुजर गया! हिसाब यह लगाया जा रहा है कि 'अम्फान' ओड़िशा से कट कर निकल गया, 'निसर्ग' ने मुंबई के चेहरे पर कोई गहरी खरोंच नहीं डाली और तूफान कमजोर पड़ गया। तूफान कैसे कमजोर पड़ गया, इसका हिसाब लगाया आपने? जवाब तुरंत आता है, मौत के आंकड़े देखिए। इतने कम मरे तो क्या ताकत थी तूफान में। लेकिन यह हिसाब बहुत गलत ही नहीं, बहुत खतरनाक भी है। कोई तूफान यों ही नहीं गुजर जाता, बहुत कुछ कह कर, बहुत कुछ दिखाकर जाता है और यह भी कह जाता है कि फिर आऊंगा।

विज्ञान ने इतने सालों की खोज और शोध से यह तो संभव बना दिया है कि हम ऐसी प्राकृतिक आपदाओं की आहट पहले से जान जाते हैं और किस्म-किस्म की छतरियां तानकर अपनी जान बचा लेते हैं। फिर माल का जो होना हो, हो। इसके आगे और इससे अधिक विज्ञान कुछ कर भी तो नहीं सकता है। विज्ञान का रिश्ता ज्ञान से है। वह ज्ञान तो देता है कि यह क्या हुआ और क्यों हुआ। उससे बचने या उससे बच निकलने का अभिक्रम तो हमें ही करना होगा। हम वह न करें तो विज्ञान न तो 'लॉकडाउन' करने आएगा, न 'क्वारंटाइन' में डालने पहुंचेगा।

विज्ञान ने हमें बताया है कि यह सारा खेल जलवायु-परिवर्तन का है। जल और वायु दोनों ही निरंतर हमारे निशाने पर हों और हमारा जीवन-व्यापार सामान्य चलता रहे, क्या यह संभव है? विज्ञान कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता है। जब आप जल और वायु में परिवर्तन करेंगे तो पर्यावरण में परिवर्तन होगा ही, क्योंकि ए सब एक संतुलित चक्र में बंध कर चलते हैं। गणित के प्रमेय की तरह यह सिद्ध अवधारणा है। हवा में जब भी कार्बन की मात्रा बढ़ेगी, पर्यावरण में उसकी प्रतिक्रिया होगी। कार्बन की मात्रा बढ़ेगी तो पर्यावरण में गर्मी बढ़ेगी। गर्मी बढ़ेगी तो प्रकृति में जहां भी बर्फ होगी, वह पिघलेगी। पहाड़ पिघलेंगे, ग्लेशियर पिघलेंगे तो समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा। समुद्र

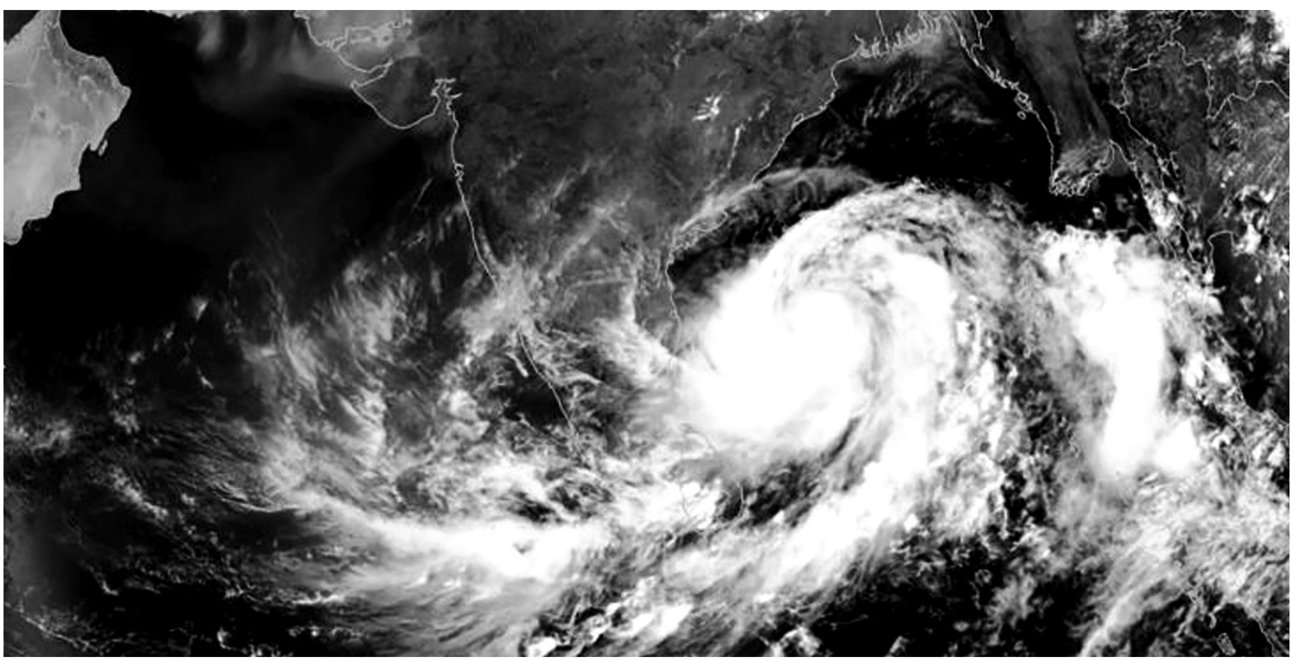

अपनी हदें तोड़कर धरती पर चढ़ आएगा और गांव- मुहल्ले नगर- देश सब शनैः-शनैः डूबते जाएंगे। इसका असर धरती पर होगा, नदी-समुद्रों के पानी की सतह पर होगा और गर्भ में भी होगा। इसका असर धरती के नीचे की दुनिया पर भी होगा। जो डूब जाएंगे वे तो समझिए बच जाएंगे, लेकिन जो बच जाएंगे वे भी जाएंगे। फसलें मरेंगी, फल-फूल का संसार उजड़ेगा, अकाल होगा, तूफान होगा, भूकंप होगा। इतना ही नहीं होगा, कोरोना की तरह के तमाम नए-अजनबी रोगों का हमला होगा। जलवायु-परिवर्तन अपनी औलादों को प्राणी-जगत तक पहुंचाता है और वे नए-नए वायरसों के वाहक बन जाते हैं। अभी हम खोज रहे हैं कि कोरोना किस प्राणी से होकर हमारे पास पहुंचा है। जब तक हम यह खोज करेंगे तब तक प्रकृति कुछ और नए वायरस हमारे पास पहुंचा रही होगी। यह सिलसिला न आज का है, न कल खत्म होने वाला है। यह कार्बन के कंधों पर बैठा है और हमारे विकास के स्वर्णिम महल के कंधों पर कार्बन बैठा है।

कार्बन को रोकना हममें से किसी के बस में नहीं है, क्योंकि हमने कार्बन को ही अपने विकास का आधार बना रखा है। प्रकृति कार्बन को जहां तक संभव है, दबा-छिपाकर रखती है, क्योंकि वह इसका खतरनाक चरित्र जानती है। हम छिपाकर रखा कार्बन उसके पेट से खोद कर निकाल लेते हैं। कोयला निकाल कर बिजली बनाते हैं, तेल निकाल कर कार चलाते व हवाई जहाज उड़ाते हैं। बिजली और कार के बीच में आ जाते हैं, धरती से आकाश तक फैले हुए हमारे नाना प्रकार के आरामगाह। सब एक ही काम करते हैं, छिपाकर रखा हुआ कार्बन हवा में फेंकते हैं। जल और वायु दोनों पर लगातार कार्बन का हमला होता रहता है। प्रकृति के इंजीनियर रात-दिन इस हमले का मुकाबला करने में लगे रहते हैं, लेकिन कर नहीं पाते। क्योंकि यह उनकी क्षमता से कहीं बड़ा काम हो जाता है। यह कुछ वैसा ही है जैसे जब भी आप कोई उपकरण खरीद कर लाते हैं तो उस पर लिखा देखते हैं कि इसकी मोटर लगातार कितने घंटे चलाई जा सकती है। उस मर्यादा के भीतर आप चलाते हैं तो उपकरण अच्छा

सागरों को छोटा और आसमान को धुंधला करने वाला कोई भी काम तुम्हारे हित में नहीं है। विज्ञान की राजनीति और विज्ञान से राजनीति हमेशा आत्मघाती होगी। प्राणी-जगत और मनुष्य-जगत अपने-अपने दायरे में, दो गज की दूरी बनाकर ही रहें, क्योंकि इनका सहजीवन शुभ है। अशुभ है इनका एक-दूसरे में रहना।

काम देता है। मर्यादा तोड़ते हैं तो मोटर बंद पड़ जाती है या फुंक जाती है। ऐसा ही प्रकृति के साथ भी है। वह अपनी क्षमता के भीतर अपने संरक्षण में पूर्ण सक्षम है।

आप देखिए न, सारा संसार कोरोना की चादर तले कसमसा रहा है तो प्रकृति संवरती जा रही है। जल और वायु दोनों धुल-पुंछ रहे हैं। 'नमामि गंगे परियोजना' लॉकडाउन में है, लेकिन गंगा अपने उद्गम से लेकर नीचे तक जैसी साफ हुई है वैसी साफ गंगा तो कभी देखी ही नहीं थी! हिमालय की चोटियां दूर से नजर आने लगी हैं और हमारी खिड़कियों से ऐसे पंछी दिखाई देने लगे हैं, जिन्हें हमने 'विलुप्त' की श्रेणी में डाल रखा था। यह सब सिर्फ इसलिए हो रहा है कि हम अपना विकास लेकर जरा पीछे हट गए हैं। हम हटे हैं तो प्रकृति अपने काम पर लग गई है। इसलिए न तो पर्यावरण बचाने की जरूरत है और न धरती को। जरूरत है, लोभ व द्वेष से भरी अपनी जीवन-शैली बदलने की। मतलब अपना कार्बन-जाल समेट लेने की।

'लॉकडाउन' के बाद से अब तक देश की राजधानी दिल्ली में पांच बार भूकंप के झटके आए हैं। धरती के नीचे का विज्ञान जानने वाले बता रहे हैं कि नीचे काफी कोहराम मचा है। कुछ भी घट सकता है। कोरोना तो आकर बैठा ही है। हम उसके सामने बेबस हैं, क्योंकि हम इसे जानते ही नहीं हैं। हमारे शरीर का सुरक्षा-तंत्र अपने भीतर प्रवेश करने वाले जिस-जिस दुश्मन से लड़ता है, उसकी पहचान सुरक्षित रख लेता है। ऐसी करोड़ों पहचानें उसके यहां संग्रहित हैं। उनमें से कोई एक विषाणु भी भीतर आ जाए तो वे हमला कर उसका काम तमाम कर देते हैं। लेकिन जब कोई अनजाना विषाणु भीतर प्रवेश करता है तो वे अवश हो जाते हैं। उनके पास जितने हथियार हैं वे इन पर काम नहीं आते। तो इस नई बीमारी का सामना करने लायक हथियार बनाने में उसे वक्त लग जाता है। इस दौरान जो जहां, जैसे और जितना मरे, उसकी फिक्र वह कर ही नहीं सकता है। प्रकृति न सदय होती है, न निर्दय, वह तटस्थ होती है।

कोई भी तूफान, फिर उसका नाम 'अम्फान' हो कि 'निसर्ग' कि 'कोरोना,' गुजर नहीं जाता, कमजोर नहीं पड़ जाता, ऊंची आवाज में फिर से लौट आने का अपना संदेश देकर चला नहीं जाता तब तक उसके असर भोगने होंगे। वह कहकर गया है और कोरोना लगातार, बार-बार कह रहा है कि पिछले कोई 10 हजार साल में तुमने जितना 'विकास' किया है, उसमें ही तुम्हारे विनाश के बीज छिपे हैं। उससे हाथ खींच लो। मनुष्य और मनुष्य के बीच में दो गज की दूरी भी न रखी जा सके, ऐसी घनी आबादी के महानगर मत बनाओ। मत कहो उसे सभ्यता जो अकूत संसाधनों को खाकर ही जिंदा रह पाती है। सागरों को छोटा और आसमान को धुंधला करने वाला कोई भी काम तुम्हारे हित में नहीं है। विज्ञान की राजनीति और विज्ञान से राजनीति हमेशा आत्मघाती होगी। प्राणी-जगत और मनुष्य-जगत अपने-अपने दायरे में, दो गज की दूरी बनाकर ही रहें, क्योंकि इनका सहजीवन शुभ है। अशुभ है इनका एक-दूसरे में रहना। गांधी नाम के व्यक्ति ने इसके लिए एक सुंदर-सा शब्द दिया थाः 'स्वेच्छा से स्वीकारी हुई गरीबी।' यही अमीरी की चाबी है। लाचारी नहीं, अपनी पसंदगी! हम पसंद तो करें। ■

कॉरपोरेट खेती के लिए बदले जा रहे कानून

विवेकानंद माथने

भारत सहित पूरी दुनिया की लूट करने के लिए कॉरपोरेट कंपनियां खेती, उद्योग और व्यापार पर कब्जा करना चाहती है। भारत में इन कंपनियों ने योजनाबद्ध तरीके से ग्रामोद्योग को खत्म किया। जल, जमीन, खनिज पर मालिकाना हक प्राप्त किया। अब वह खेती और व्यापार पर कब्जा करना चाहती है। भारत सरकार द्वारा जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि प्राकृतिक संसाधनों पर कॉरपोरेट्स को मालिकाना हक देने के लिए नीति और कानूनों में बदलाव की प्रक्रिया जारी है। बैंक, बीमा कंपनियां, रेल और सभी सार्वजनिक क्षेत्रों को देशी-विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले किया जा रहा है। अब सरकार खेती और व्यापार को कॉरपोरेट्स को सौंपने के लिए नीतियां और कानूनों में बदलाव करने का काम कर रही है।

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए किसानों की संख्या आधी करना और धीरे-धीरे खेती में केवल 20 प्रतिशत किसान रखकर बाकी किसानों को खेती से बाहर करना केंद्र सरकार और नीति आयोग की घोषित नीति है। यह 20 प्रतिशत किसान कॉरपोरेट किसान होंगे, जो कंपनी खेती या करार खेती के माध्यम से खेती करेंगे। सरकार मानती है कि छोटे जोत रखने वाले किसान पूंजी, तंत्रज्ञान के अभाव के कारण अधिक उत्पादन की चुनौती को स्वीकार नहीं कर पाते इसलिए उन्हें खेती से हटाना जरूरी है।

केंद्र सरकार की कृषि नीति कॉरपोरेट खेती की दिशा में आगे बढ़ रही है। भारत में अब करार खेती या कॉरपोरेट खेती के माध्यम से कंपनियां खेती करेगी। रासायनिक खेती, जैविक खेती में बीज, खाद, कीटनाशक, यंत्र और तंत्रज्ञान आदि इनपुट पर कंपनियों ने पहले ही नियंत्रण प्राप्त किया है। यह कॉरपोरेट कंपनियां अब खेती का मालिक बनकर या करार खेती के माध्यम से खेती करेगी। मंडियों के अंदर इनाम द्वारा और मंडियों के बाहर एक देश एक बाजार में कृषि उत्पाद खरीदा जाएगा। फसलों का उत्पादन, भांडारण, प्रक्रिया उत्पाद, घरेलू बाजार और विश्व बाजार में खरीद, बिक्री, आयात, निर्यात सभी काम यह बहुराष्ट्रीय कंपनियां करेगी।

दुनिया के कौन से देश में कौन से उत्पादन की कितनी जरूरत है, इसका अध्ययन कर आंकड़ा इकट्ठा किया जाएगा और कॉरपोरेट खेती या करार खेती द्वारा दुनिया के बाजार के लिए अधिक मुनाफा देने वाली कृषि उपज पैदा की जाएगी। कंपनियों द्वारा गुणवत्ता मानक के आधार पर किसानों से ऑनलाइन फसलें खरीदी जाएंगी। स्थानीय गोदामों में ही भंडारण किया जाएगा। साथ ही कृषि प्रक्रिया उद्योगों में तैयार उत्पाद बनाए जाएंगे। खरीद और बिक्री के लिए आपूर्ति श्रृंखला (सप्लाई चेन) का नेटवर्क बनाकर कच्चा माल और प्रक्रिया उत्पाद दुनिया के बाजारों में मुनाफे की संभावना देखकर बेचे जाएंगे। यह कंपनियां आयात-निर्यात के माध्यम से फसलों के दाम बढ़ाने-घटाने का काम करेगी।

इसे एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए किसी कंपनी को आलू का उत्पादन करना है। किसानों की प्रोड्यूसर कंपनियां बनाने का काम तो पहले से चल रहा है। कंपनी करार खेती द्वारा किसी उत्पादक किसान के समूह के साथ एक करार करके आलू की पैदावार सुनिश्चित करेगी। सभी इनपुट, तकनीकी और यांत्रिकी उपलब्ध कराएगी। उत्पादन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए किस कंपनी से कौन सा बीज, खाद, कीटनाशक का इस्तेमाल करना है यह सब कंपनियां तय करेंगी। गुणवत्ता के मानक पूरे करने पर ही आलू तय कीमत पर खरीदा जाएगा। किसान अगर प्रशिक्षित है तो खेती में मजदूरी कर सकेगा। यह गुणवत्ता पूर्ण आलू या फिर आलू चिप्स या अन्य प्रक्रिया उत्पाद घरेलू या विदेशी बाजार में जहां अधिक मुनाफा मिलेगा, वहां बेचा जाएगा।

मान लीजिए, भारत में प्याज की पैदावार अच्छी हुई है। किसानों को बाजार में अच्छे दाम मिल रहे हैं। तब यह कंपनियां विदेशों से प्याज आयात करके बाजार में उतारेगी और प्याज की कीमतें गिरा देगी। फिर गिरी कीमतों में बड़े पैमाने में प्याज खरीद कर पीपीपी में बनाए गए गोदामों में जीवन के लिए आवश्यक वस्तु

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए किसानों की संख्या आधी करना और धीरे-धीरे खेती में केवल 20 प्रतिशत किसान रखकर बाकी किसानों को खेती से बाहर करना केंद्र सरकार और नीति आयोग की घोषित नीति है।

अधिनियम से हटने के कारण चाहे जितना भांडारण कर लेगी और दुनिया के बाजार में जहां जब अधिक मुनाफा मिलेगा वहां बेचेगी। यह तो आज भी होता है, लेकिन अब उसे कानून बनाकर एक व्यवस्था का रूप दिया जा रहा है।

किसानों के लिए तो आज की व्यवस्था भी लूट की व्यवस्था है। इसने किसानों को बदहाल करके रखा है। लेकिन अब इस लूट व्यवस्था को वैश्विक लूट व्यवस्था में बदलने और कानूनी दायरे में लाने के लिए बदलाव किए जा रहे हैं। पारिवारिक खेती को कॉरपोरेट खेती में बदलने के लिए कानूनी बाधाएं दूर करने हेतु केंद्र सरकार

नीति और कानून में बदलाव करने का काम कर रही है। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए केंद्र सरकार ने करार खेती कानून, जीवन के लिए आवश्यक वस्तु अधिनियम, कृषि उपज वाणिज्य एवं बाजार अध्यादेश बनाए गए है।

कृषि के लिए बिजली की सब्सिडी खत्म करना, सिंचाई के लिए मीटर से नाप कर पानी की बिक्री, पेट्रोलियम पर सब्सिडी खत्म करना, खेती में पूंजी निवेश की अनुमति देना, इजरायल और दूसरे देशों से कृषि तकनीकी प्राप्त करना, करार खेती कानून, खेती जमीन की अधिकतम सीमा निर्धारित करने वाला सीलिंग कानून हटाने की कोशिश, पीपीपी के तहत गोदामों का निर्माण, कृषि उत्पादों के भंडारण की मर्यादा हटाना, कृषि उत्पन्न बाजार समिति का अस्तित्व समाप्त करने के लिए एक देश एक बाजार कानून, कृषि उपज खरीद और प्रक्रिया के लिए प्रोड्यूसर कंपनी कानून, किसानों से सीधे ऑनलाइन खरीद के लिए ई नाम कानून आदि में कॉरपोरेट खेती को लाभ पहुंचाने के लिए नीति और कानून में बदलाव की प्रक्रिया जारी है।

करार खेती कॉरपोरेट खेती का प्रवेश द्वार है। सीलिंग ऐक्ट के कारण कंपनियां खेती करने के लिए एक मर्यादा से अधिक जमीन नहीं खरीद सकती। इसलिए सीलिंग ऐक्ट हटाने की कोशिश जारी है। करार खेती में किसी उत्पादक किसान समुदाय से करार किया जाएगा। करार खेती में किसानों को कंपनियों के दिशा-निर्देशों के अनुसार खेती करनी होगी।

कंपनियों ने अपने उत्पाद बेचने के लिए व्यवस्था स्थापित कर ली है। कंपनी से ग्राहकों तक आपूर्ति शृंखला, ई-बाजार, ई-कॉमर्स, ई-मार्केटिंग आदि के द्वारा उत्पाद पहुंचाया जाएगा। मॉल्स, शॉपिंग सेंटर, रिटेल दुकानें आदि में कंपनियां लगातार विस्तार कर रही हैं। इसके लिए हर क्षेत्र में खरीद-बिक्री दोनों के लिए आपूर्ति शृंखला तैयार की जा रही है। भारत के लघु उद्योग और छोटे व्यापारी केवल कमीशन एजेंट या फ्रेंचाइजी के रूप में काम करेंगे।

भारत सरकार द्वारा नीति और कानूनों में किए जा रहे बदलाव को एक साथ जोड़कर देखने से नए भारत की भविष्यकालीन तस्वीर स्पष्ट होती है। अब हम आसानी से समझ सकते हैं कि सरकार स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के लिए नहीं बल्कि खेती को कॉरपोरेट्स के हवाले करने के लिए कानून बना रही है। लेकिन जैसे शराब भरी बोतल पर अमृत लिख देने से शराब अमृत नहीं बन जाती, वैसे ही कॉरपोरेट्स को लाभ पहुंचाने के लिए नीतियां बनाकर उसे स्वदेशी और आत्मनिर्भरता कह देने से देश आत्मनिर्भर नहीं बनता। मेक इन इंडिया और पर-निर्भरता को स्वदेशी और आत्मनिर्भर कहना केवल झूठ ही नहीं, बल्कि वह देश के किसान, लघु उद्योग और छोटे व्यापारियों के साथ किया जा रहा धोखा है।

जब किसानों के सामने इतनी बड़ी चुनौती हो, इस गंभीर संकट से लड़ने के लिए किसानों को तैयार करने की जरूरत हो, तब कुछ किसान संगठन स्वामीनाथन आयोग के अनुसार लागत से डेढ़ गुना कीमत और कर्ज माफी जैसे केवल दो मांगों के लिए आंदोलन कर रहे हैं। ऐसा करके वे देश के किसानों को गुमराह करने का काम कर रहे हैं। कुछ किसान संगठनों द्वारा जीवन के लिए आवश्यक वस्तु अधिनियम, सीलिंग ऐक्ट को किसान विरोधी कानून कहकर उसे हटाने की मांग की जा रही है। यह तभी हो सकता है, जब ऐसे संगठन कॉरपोरेट खेती के गंभीर संकट को समझ नहीं रहे या फिर वह कॉरपोरेट की साजिश में शामिल है। स्वामीनाथन फाउंडेशन भी उन्हें मदद कर रहा है।

कर्ज माफी से किसानों को कुछ लाभ जरूर है, लेकिन इस मांग का महत्व तभी है जब किसानों को कर्ज के जाल से स्थायी मुक्ति के लिए प्रयास किया जाए, अन्यथा कर्ज माफी किसानों को कम साहूकार बैंकों को ज्यादा मददगार साबित होती है। एमएसपी फसलों का उत्पादन मूल्य नहीं है, बल्कि वह किसानों को न्यूनतम मूल्य की गारंटी देने के लिए बनाई गई व्यवस्था है। एमएसपी के तहत कुल उत्पादन के 10 प्रतिशत से कम फसलें खरीद की जाती है। अगर सी-2 पर 50 प्रतिशत दाम बढ़ा दिए जाते हैं, तब भी किसानों की आय में केवल 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी होगी।

प्राकृतिक खेती को रासायनिक खेती में बदलने में, थाली में जहर पहुंचाने में, बीजों की स्वाधीनता, फसलों की जैव विविधता नष्ट कर एक फसली खेती में बदलने के लिए अगर कोई एक व्यक्ति सबसे अधिक जिम्मेदार है तो वह एम.एस. स्वामीनाथन है। इसके बावजूद स्वामीनाथन आयोग लागू करो की मांग बेईमानी है।

खेती को रसायन मुक्त और थाली को जहर मुक्त करना जरूरी है, ऐसा हम सब मानते है। इसके लिए किसानों ने प्राकृतिक खेती करना शुरू किया है। लेकिन व्यावसायिक नजरिया लाभ कमाने के लिए हर काम को अवसर में बदलने का काम करती है। विषरहित खाद्यान्न की बढ़ती मांग को लाभ में परिवर्तित करने के लिए अब कॉरपोरेट कंपनियों ने जैविक खेती और प्राकृतिक खेती करना शुरू कर दिया है। इसके लिए सरकार और कॉरपोरेट कंपनियों ने मिलकर योजना बना ली है।

केंद्र सरकार ने भारत को पचास खरब (पांच ट्रिलियन) डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने के लिए पांच साल में 100 लाख करोड़ रुपयों के हिसाब से हर साल 20 लाख करोड़ रुपये निवेश करने की घोषणा की थी। इस साल सरकार द्वारा घोषित 20 लाख करोड़ रुपयों में लगभग 80 प्रतिशत राशि कर्ज की व्यवस्था है। यह बैंकों की साहूकारी की व्यवस्था है। इसे आप विदेशी बैंकों की निवेश अनुमति से जोड़कर देखेंगे, तब तस्वीर और साफ होगी।

अभी भी भारत की स्थिति बहुत विकट है। लेकिन वर्तमान सरकार जो नीतियां अपना रही है, उससे हम कॉरपोरेटी गुलामी से बच नहीं पाएंगे। उससे देश पूरी तरह से कॉरपोरेटी गुलामी में जकड़ जाएगा। हम अंग्रेजों के डेढ़ सौ साल गुलाम रहे। लेकिन अगर हम कॉरपोरेटी गुलामी में जकड़ गए तो हजारों साल तक इस गुलामी से मुक्त होना संभव नहीं है।

हे मेरे देश के किसानों, केंद्र सरकार द्वारा भारत की खेती को कॉरपोरेट्स के हवाले करने के नीति और कानूनों का विरोध करने के लिए संगठित होकर संघर्ष करना होगा। आओ, किसानों के लिए न्याय और आजादी के लिए हम मिलकर संघर्ष करते हैं। ■

कश्मीर : विवाद के बहत्तर साल

बलबीर जैन

पिछले तीस सालों में कश्मीर घाटी में आंतकवाद के कारण 45,000 से ज्यादा जानें जा चुकी हैं। इनमें 25,000 आंतकी थे, जिनमें 80 फीसदी से ज्यादा कश्मीरी थे। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि कश्मीर घाटी में किस हद तक विलगाव की भावना पनप गई है। साथ ही यह मानना होगा कि आंतकवाद में विदेशी हाथ की प्रमुख भूमिका रही है। दरअसल शुरुआत तो आधुनिकतम हथियारों से लैस अनुभवी विदेशी आंतकियों ने ही की थी, जो कि कश्मीर घाटी में दहशत फैलाने से पूर्व तालिबान के साथ मिलकर अफगानिस्तान में सक्रिय थे।

कश्मीर समस्या को मात्र कानून-व्यवस्था की समस्या अथवा विदेशी दखलदांजी और घुसपैठ से जुड़ी समस्या मानना मुनासिब नहीं होगा। राजनीतिक समाधान के बिना वहां अमन-चैन लाना मुश्किल है। पर आंतक एक अति विषम समस्या है, जिससे छुटकारा पाकर ही कश्मीर समस्या का समुचित समाधान निकल सकता है।

कश्मीर में आतंकवाद कब और कैसे खत्म होगा? आंकड़ों के आधार पर यह दावा किया जाता है कि जल्द ही इस समस्या को हल कर लिया जाएगा। गौरतलब है कि 1990 के दशक में प्रतिवर्ष औसतन 1250 आंतकी मारे गए थे। 2000 के दशक में औसतन 1050 मारे गए। पिछले दशक में उनकी औसत तादाद तकरीबन 180 थी। तो क्या कश्मीर में आंतकवाद का अंत होना तय है? काश ऐसा होता पर जमीनी हकीकत एक दूसरी तस्वीर पेश करती है।

अनुच्छेद-370 के प्रावधान निरस्त होने पर दूरियां बढ़ीं

5 अगस्त 2019 से अनुच्छेद- 370 और 35ए के अधिकांश प्रावधानों को निरस्त किए जाने के विरोध में तब से कश्मीर घाटी में कारोबार बंद रहा और यह बंद 15 नवंबर तक (105 दिन) लगातार जारी रखा गया। ऐसा लगता है कि 15 नवंबर को आंतकियों के निर्देश अनुसार बंद हटाया गया था। यहां यह दलील दी जा सकती है कि वे ऐसा दहशत में कर रहे हैं। सरकारी प्रचार-तंत्र द्वारा हालात सामान्य होने का दावा करने पर एक खास समय पर रोजाना बंद करवाकर आंतकियों ने अपनी ताकत का अहसास कराया है। घाटी में आंतकियों के हिमायतियों की तादाद कम नहीं है। सुरक्षा बलों से उनके बचाव में काफी संख्या में स्थानीय लोग उनके समर्थक हैं। कश्मीर घाटी में उन्हें आंतकी या दहशतगर्द न कहकर मुजाहिद के नाम से जाना जाता है। मारे जाने पर उनके जनाजे में भारी संख्या में जनसमूह शामिल होता है। यही नहीं रोजमर्रा के कामकाज पर मौजूदा बंदिशों के लिए आम कश्मीरी भारत सरकार को ही कसूरवार मानता है।

अनुच्छेद- 370 और धारा-35ए के प्रमुख प्रावधानों के निरस्त होने से आम कश्मीरी बहुत ज्यादा हताश हो गया है। यह सही है कि 5 अगस्त 2019 से पूर्व अथवा 2014 के पूर्व भी हालात काफी खराब थे। पर एक बड़ा फर्क था कि तब कश्मीर घाटी में दस फीसदी से कम आबादी पाकिस्तान का हिमायती थी। तब भी असंतोष था, जो इतना बढ़ गया है कि अब कश्मीर घाटी की आबादी का एक अच्छा-खासा हिस्सा पाकिस्तान समर्थक हो गया है। पहले वह आजादी के समर्थक थे अब वे पाकिस्तान/तालिबान या इस्लामिक स्टेट जैसे खतरनाक समूहों के समर्थक होते जा रहे हैं।

कश्मीरियों का अलगाववादियों के प्रति झुकाव नकारात्मक कारणों से

पर समस्या का समाधान तो करना ही होगा। कश्मीर घाटी को तालिबान या इस्लामिक स्टेट जैसे समूह के हवाले नहीं किया जा सकता। कश्मीरी आवाम का अलगाववादियों के प्रति झुकाव नकारात्मक कारणों से है। वे 1984 के पूर्व कश्मीर घाटी में हाशिए पर थे। चुनी हुई सरकार को तिकड़मों से हटाने और 1987 के विधानसभा चुनाव में धांधलियों और शिकायत करने वालों को जेल में बंद करने से ही अलगाववादियों को अपनी उम्मीद से

ज्यादा जन समर्थन मिला था। उसके साथ ही कश्मीर में हिंसा और अशांति के दौर की शुरुआत हो गई थी।

कश्मीर में सकारात्मक पहल के लिए लोकतांत्रिक प्रक्रिया की जरूरत है। कश्मीर घाटी में अलगाववादियों का इसी से मुकाबला किया सकता है और इसी से आंतकियों की कश्मीरी आवाम में पैठ को रोका जा सकता है। गौरतलब है कि 1953 से 1974 तक राज्य में मुख्यमंत्री वस्तुतः केंद्र सरकार द्वारा नामांकित होता था। 1977 के पूर्व के सभी चुनाव ढकोसला थे। 1977 में पहली बार निष्पक्ष चुनाव हुए थे। कश्मीरी आवाम का भरोसा जीतने के लिए एक बार फिर कश्मीर में वास्तविक लोकतंत्र बहाल करने की जरूरत है।

पिछली गलतियां ही दोहराई जा रही हैं

पिछले 72 साल के घटनाक्रम की समीक्षा करने से ही समाधान मिल सकता है। लेकिन यहां तो पिछली गलतियां ही दोहराई जा रही हैं। आर्थिक पैकेज समस्या का हल नहीं है उससे कश्मीरी आवाम का भरोसा नहीं जीता जा सकता। गौरतलब है कि 1975 में शेख अबदुल्ला सरकार ने राशन पर सब्सिडी में भारी कटौती की थी। फिर भी उनके दल ने 1977 के निष्पक्ष चुनाव में कश्मीर घाटी में 42 में 40 सीटें जीती थी और तब 67 फीसदी मतदान हुआ था। कई आर्थिक पैकेजों के बाबजूद 2019 के लोकसभा चुनाव में मतदान 15 फीसदी से कम ही रहा है।

1947 में कश्मीरी आवाम ने जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धांत को नकार दिया था और बहुलवाद के साथ रहने का निश्चय किया था। अब वहां उस द्विराष्ट्र सिद्धांत में निहित बहुसंख्यकवाद हावी होने लगा है। क्या अनुच्छेद- 370 और धारा-35ए के प्रमुख प्रावधानों के निरस्त करने के फैसले का बहुसंख्यकवादी जवाब है?

अनुच्छेद- 370 और 35ए को कश्मीरी आवाम के विरोध के बावजूद हटाने से क्या मिला है? इन कानूनों के मौजूद रहते भी 1990 से 1996 तक राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। अब भी राष्ट्रपति शासन को बढ़ाया जा सकता था। इन प्रावधानों को इस तरह हटाना एक बहुसंख्यकवादी कदम है। इससे अलगाव की भावना और ज्यादा गहरा गई है। क्या उन्हें केंद्र सरकार द्वारा थोपा गया बहुसंख्यकवाद स्वीकार्य होगा? कश्मीर समस्या से जुड़े कई सवालों को अनदेखा किया जाता रहा है। समाधान के लिए उन सवालों को सुलझाना जरूरी है। इन परिस्थितियों में विगत सात दशकों के घटनाक्रम का समुचित आकलन करते हुए एक मुनासिब कश्मीर नीति जरूरी है।

भारत में विलय शुरू से ही विवादों में

जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय शुरू से ही विवादों में घिर गया था। महाराजा हरि सिंह आजादी के दो माह बाद भी विलय-पत्र पर दस्तखत करने से कतरा रहे थे। 22 अक्तूबर 1947 को कबायली हमले के कारण उन्होंने 26 अक्तूबर को विलय पत्र पर दस्तखत कर दिए। इसके साथ भारत ने कबायलियों और पाकिस्तानी फौजियों को रियासत से बाहर खदेड़ना शुरू कर दिया। पर यह युद्ध काफी लंबा खिंच गया। 01 जनवरी 1949 को भारत सरकार ने रियासत के कई इलाकों पर पाकिस्तान के जबरन कब्जे को हटवाने के लिए संयुक्त राष्ट्र से अपील की। संयुक्त राष्ट्र ने युद्धविराम का प्रस्ताव पारित कर वस्तुतः रियासत को दो हिस्सों में बांट दिया। प्रस्ताव के अनुसार, पाकिस्तान को अपनी फौजें हटानी थी और उसके बाद जनमत संग्रह के द्वारा रियासत के भविष्य का फैसला होना था। भारत जनमत संग्रह के लिए तैयार था, पर पाकिस्तान इसके लिए तैयार नहीं था। शेख अब्दुल्ला भारत में विलय के पक्षधर थे। इस कारण भारत को वहां व्यापक जनसमर्थन हासिल था। इसीलिए पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र का प्रस्ताव नहीं माना। पाकिस्तान ने रियासत का इलाका भी खाली नहीं किया और तब से कश्मीर पर भारत और पाकिस्तान के बीच विवाद चल रहा है।

अनुच्छेद- 370 और धारा-35ए के प्रमुख प्रावधानों के निरस्त होने से आम कश्मीरी बहुत ज्यादा हताश हो गया है। यह सही है कि 5 अगस्त 2019 से पूर्व अथवा 2014 के पूर्व भी हालात काफी खराब थे।

विलय की कहानी

15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हुआ पर रियासत के विलय की प्रक्रिया दो महीने बाद तक रुकी रही। वैसे विलय के लिए बातचीत जून 1947 से ही शुरू हो गई थी। महाराजा के तत्कालीन प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक इस मामले में मुस्लिम लीग के लगातार संपर्क में थे और उन्होंने कांग्रेस की उपेक्षा की थी। शायद इसी कारण महाराजा ने काक को 10 अगस्त को बर्खास्त करके नजरबंद कर लिया था, पर विलय का मामला इसके दो महीने बाद भी लंबित रहा।

जम्मू-कश्मीर रियासत में मुस्लिम बाहुल्य था और यहां का शासक हिन्दू था। शासक को विलय का फैसला करना था पर इसको जनमत के अनुसार करना आवश्यक था। कांग्रेस का भी यही मत था। दूसरी तरफ जिन्ना के अनुसार शासक को विलय संबंधी फैसले का पूरा अख्तियार था। इसके कारण हैदराबाद, जूनागढ़, भोपाल रियासतों के मामले का उनका अनुभव था। वहां के शासक मुस्लिम थे और आबादी में हिन्दू बाहुल्य थे।

कई प्रेक्षकों के अनुसार महाराजा भारत में विलय चाहते थे, पर इस में एक दिक्कत आ रही थी। पंडित नेहरू जन-सम्मत विलय चाहते थे। वे विलय के साथ ही नेशनल कांफ्रेंस की रियासत के प्रशासन में हिस्सेदारी चाहते थे। आखिरकार महाराजा को कबायली हमले के कारण ऐसा ही करना पड़ा था।

22 अक्तूबर को हथियारबंद कबायलियों ने कश्मीर घाटी सहित रियासत के कई इलाकों पर हमला कर दिया था और 25 अक्तूबर को वह श्रीनगर के बाहरी हिस्सों में पहुंच गए थे। उस वक्त महाराजा हरि सिंह और उनके प्रधानमंत्री मेहरचन्द

महाजन श्रीनगर में नहीं थे। महाराजा जम्मू चले गए थे और मेहरचन्द महाजन फौजी मदद की गुहार लगाने दिल्ली गए हुए थे।

श्रीनगर शहर पर कबायली कब्जे का खतरा मंडरा रहा था। एक ही रास्ता बचा था- भारतीय सेना हवाई मार्ग से आकर ही श्रीनगर शहर और कश्मीर घाटी को बचा सकती थी। और ऐसा ही हुआ। 26 अक्तूबर 1947 को महाराजा हरि सिंह ने असामान्य परिस्थिति में विलय के दस्तावेज पर दस्तखत कर दिए। महाराजा के दस्तखत के फौरन बाद 27 अक्तूबर को भारतीय फौज हवाई मार्ग से श्रीनगर पहुंच गई और उन्होंने कबायलियों को खदेड़ना शुरू कर दिया।

कबायलियों की तादाद बीस हजार से ज्यादा थी। इनमें ज्यादातर छद्म वेश में पाकिस्तानी फौजी थे। वे मुजफ्फराबाद और मीरपुर के रास्ते 15 अक्तूबर को रियासत में दाखिल हुए थे और उन्होंने हिन्दुओं और सिखों पर बेइंतहा जुल्म करना शुरू कर दिया। इस जुल्मों की वारदातों में बड़ी तादाद में स्थानीय मुसलमान भी शामिल हो गए थे।

दूसरी ओर कबायली उड़ी के रास्ते कश्मीर घाटी में दाखिल हुए। यहां उन्हें स्थानीय मुस्लिम समाज के विरोध का सामना करना पड़ा। उस वक्त शेख अबदुल्ला के नेतृत्व में कश्मीरी आवाम ने साम्प्रदायिक एकता की सराहनीय मिसाल पेश की थी। पर हथियारबंद कबायलियों को रोकना उनके लिए मुमकिन नहीं था। महाराजा की सेना का एक हिस्सा भी कबायलियों के साथ मिल गया था। बची-खुची सेना में से 28 सैनिकों के साथ महाराजा की सेना के ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह बारामुला में शहीद हो गए थे। पर उन्होंने झेलम नदी का पुल तबाह करके कबायलियों की रफ्तार रोक दी थी। महाराजा निराश होकर जम्मू चले गए थे और रात को सोने से पहले उन्होंने अपने एडीसी को कहा कि श्रीनगर की तरफ भारतीय वायुसेना के हवाई जहाजों की आमद नहीं हुई तो उन्हें सोते हुए गोली मार दी जाए। भारतीय सेना के हवाई मार्ग से पहुंचने तक नेशनल कांफ्रेंस के कार्यकर्ताओं की कुर्बानियों के कारण कबायली हवाई अड्डे तक पहुंच नहीं पाए थे और इस तरह कश्मीर घाटी पर पाकिस्तान कब्जा करने में नाकामयाब हो गया।

यह युद्ध काफी लंबा खिंच गया और संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव के अनुसार 01 जनवरी 1949 को युद्धविराम की घोषणा के साथ ही बंद हो पाया। उस वक्त तक पाकिस्तान के कब्जे में तकरीबन एक तिहाई हिस्सा चला गया और यह आज भी पाकिस्तान के कब्जे में ही है। कानूनी तौर पर रियासत का भारत में विलय हो चुका है।

जनमत संग्रह का सवाल विगत 70 सालों में कई बार उठाया जाता रहा है। पर क्या इसकी इस वक्त प्रासांगिकता है? इन उलझनों को नजरअंदाज करना ही मुनासिब होगा। वैसे भी 1977 और 1983 में निष्पक्ष और निर्बाध चुनाव के नतीजों से स्पष्ट है कि कश्मीरी आवाम ने द्विराष्ट्र सिद्धांत को निस्संदेह तौर पर नकार दिया था।

शेख ने रियासत का प्रशासन संभालने के साथ ही केंद्र-राज्य संबंधों को अलग तरीके से परिभाषित करना शुरू कर दिया। केंद्र के अधीन रियासत के केवल चार महकमे थे- संचार, विदेशी मामले, सुरक्षा और मुद्रा।

पर यह मुद्दा भारतीय उपमहाद्वीप में विवादास्पद रहा है और इसका शांतिपूर्वक समाधान डॉक्टर लोहिया की भारत-पाकिस्तान महासंघ की अवधारणा में ही निहित है। पर दोनों देशों के अदूरदर्शी राजनेताओं ने एक-दूसरे के खिलाफ जो युद्ध का उन्मादपूर्ण वातावरण बनाया है, वह इस दिशा में एक बहुत बड़ी बाधा है। दोनों देशों में शिक्षा के समुचित विकास से महासंघ का मार्ग अवश्य प्रशस्त होगा। बर्लिन वाल को ढहाने का उदाहरण हमारे सामने है।

शेख की नियुक्ति और बर्खास्तगी

विलय के साथ ही शेख अब्दुल्ला को रियासत के प्रशासन में एक प्रमुख ओहदे पर नियुक्ति की गई थी। तीन महीने तक महाराजा के प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन के सहयोग से रियासत का प्रशासन चलाया गया। तत्पश्चात शेख अब्दुल्ला प्रधानमंत्री और युवराज कर्ण सिंह रियासत के सदरे रियासत बनाए गए। शेख अब्दुल्ला 9 अगस्त 1953 तक इस ओहदे पर काबिज रहे।

शेख ने रियासत का प्रशासन संभालने के साथ ही केंद्र-राज्य संबंधों को अलग तरीके से परिभाषित करना शुरू कर दिया। केंद्र के अधीन रियासत के केवल चार महकमे थे- संचार, विदेशी मामले, सुरक्षा और मुद्रा। विलय के वक्त केंद्र सरकार ने इस व्यवस्था को मंजूर कर लिया था।

अनुच्छेद- 370 को संविधान सभा से 1949 में पारित कराने से संवैधानिक मंजूरी मिल गई थी। पर इस व्यवस्था का कई कारणों से विरोध भी शुरू हो गया। देश के बाकी हिस्सों से रियासत में दाखिल होने के लिए परमिट की व्यवस्था से जम्मू में काफी असंतोष था। कुछ मामलों में केंद्र सरकार ने बदलाव के सुझाव दिए थे। जिनमें से ज्यादातर को राज्य सरकार ने नकार दिया था। नेशनल कांफ्रेंस ने इस विषय पर एक उच्चस्तरीय कमेटी का गठन किया, पर उस कमेटी की बहस की रपटों से राज्य के अधिकारों को एक अलग तरीके से परिभाषित करते हुए एकीकरण की विपरीत दिशा की तरफ अग्रसर होने के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।

अनुच्छेद- 370 और केंद्र के साथ रियासत के संबंधों के परिप्रेक्ष्य में पंडित नेहरू और शेख अब्दुल्ला के बीच असहमति पनप रही थी और शेख अब्दुल्ला अनुच्छेद-370 को कमजोर करने को तैयार नहीं थे। इस असहमति की पृष्ठभूमि में 9 अगस्त 1953 को सदरे रियासत कर्ण सिंह ने राज्य मंत्रिमंडल की सिफारिश पर शेख अब्दुल्ला को बर्खास्त करके नजरबंद कर दिया। बख्शी गुलाम मोहम्मद को राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया।

पार्थसारथी-बेग समझौते के तहत 1974 में शेख की वापसी

शेख अब्दुल्ला जैसे कद्दावर नेता को इस तरह बेदखल करना किसी तरह से भी

मुनासिब नहीं था। संवाद चल रहा था और उसे बीच में छोड़कर विवादास्पद तरीके से बख्शी सरकार का गठन किया गया। 21 साल बाद शेख अब्दुल्ला के साथ संवाद शुरू किया गया। पार्थसारथी-बेग समझौते के तहत 1974 में शेख अब्दुल्ला ने एक बार फिर राज्य की सत्ता संभाली।

शेख अब्दुल्ला ने 1931 से राजतंत्र के खिलाफ मजबूत जन आंदोलन की अगुआई की थी। शेख अब्दुल्ला और चौधरी गुलाम अब्बास ने 1931 में मुस्लिम काफ्रेंस का गठन किया था। 1938 में शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में इसका नाम बदलकर नेशनल कांफ्रेंस के नाम से एक धर्मनिरपेक्ष संगठन के रूप में पुनर्गठन किया गया। इसके साथ ही नेशनल कांफ्रेंस जम्मू-कश्मीर में कांग्रेस के साथ सहयोगी दल के तौर पर जुड़ गई। दूसरी तरफ चौधरी गुलाम अब्बास के नेतृत्व में मुस्लिम कांफ्रेंस मुस्लिम लीग के सहयोगी संगठन के अनुरूप कार्यरत हो गई थी। इसके अलावा शेख अब्दुल्ला और चौधरी गुलाम अब्बास में जमींदारी उन्मूलन के मामले में मतभेद भी थे। शेख जमींदारी उन्मूलन के पक्षधर थे जबकि चौधरी इसके विरोधी थे। गौरतलब है कि नेशनल कांफ्रेंस की सरकार ने आजादी के फौरन बाद काश्तकारों को जमीन का नारा साकार कर दिया। जम्मू-कश्मीर में भूमि जोत की सीमा बिना हर्जाना दिए 182 कनाल (22.75 एकड़) कर दी गई थी।

नेशनल कांफ्रेंस बनाम मुस्लिम कांफ्रेंस

नेशनल कांफ्रेंस कश्मीर घाटी में मजबूत थी, जबकि मुस्लिम कांफ्रेंस मीरपुर और मुजफ्फराबाद के इलाके में मजबूत थी। 1949 में युद्धविराम के बाद से मीरपुर और मुजफ्फराबाद का इलाका पाकिस्तान के कब्जे में है। रियासत के कई इलाकों से हमलावरों को 01 जनवरी 1949 तक खदेड़ दिया गया था; जबकि बाकी बचे इलाके मुस्लिम बहुल होने के साथ मुस्लिम लीग के गढ़ थे।

कश्मीर घाटी के पश्चिमी छोर में उरी तक ही हमलावरों को खदेड़ा गया था। आगे नीलम घाटी में मुस्लिम कांफ्रेंस का दबदबा था। जम्मू प्रांत में छम्ब-सुंदरबनी-नौशेरा तक हिंदू बहुल इलाका था और यहां तक भारत का कब्जा था और इनसे आगे पश्चिम की तरफ मीरपुर-भिम्बर-कोटली का मुस्लिम बहुल इलाका युद्धविराम के बाद पाकिस्तान के कब्जे में चला गया था। यह इलाका भी मुस्लिम कांफ्रेंस का गढ़ था। शेख अब्दुल्ला का प्रभाव क्षेत्र कश्मीर घाटी था और इस पूरे इलाके को हमलावरों से मुक्त करा लिया गया था। मुस्लिम कांफ्रेंस का लगभग पूरा प्रभाव क्षेत्र पाकिस्तान के कब्जे में चला गया। बाकी बची रियासत की 75 विधानसभा सीटों में से 43 सीटें कश्मीर घाटी की थीं। इस तरह राज्य की सत्ता की क्षेत्रीय संरचना में कश्मीर घाटी का वर्चस्व बना रहा।

धांधलियों से भरे चुनाव

जम्मू-कश्मीर में विधानसभा के चुनाव पहली बार 1951 में हुए। पर यह चुनाव एक ढकोसला थे। 75 में से 73 सीटों पर नेशनल कांफ्रेंस के उम्मीदवार निर्विरोध निर्वाचित घोषित किए गए थे। इसकी वजह चुनाव अधिकारियों के व्यापक स्वनिर्णय के अधिकार थे, जिनके तहत बाकी उम्मीदवारों के नामांकन खारिज कर दिए गए। 74वीं और 75वीं सीट पर विपक्ष के उम्मीदवारों ने इसके विरोध में अपने नाम वापस ले लिए। इस तरह शेख अब्दुल्ला ने सत्ता पर अपना निरंकुश एकाधिकार हासिल कर लिया। गौरतलब है विशेष दर्जे की वजह से जम्मू-कश्मीर में उस वक्त मनमाने कायदे-कानून थे।

केंद्र की पसंद गुलाम मोहम्मद सादिक थे पर बख्शी के समर्थन के कारण शमशुद्दीन को बख्शी का उत्तराधिकारी बनाना पड़ा था और कुछ महीने बाद राज्य की सत्ता संरचना में केंद्र सरकार की इच्छा अनुसार बदलाव लाया गया।

यह सही है कि शेख अब्दुल्ला को कश्मीर घाटी में व्यापक जन-समर्थन हासिल था। पर विपक्ष को विधानसभा में दाखिल नहीं होने देना अनुचित था। उनकी इस परिपाटी के कारण 1957, 1962, 1967 और 1972 के चुनाव के नतीजे भी धांधलियों के कारण संदेहास्पद रहे हैं। शेख अब्दुल्ला को जन समर्थन हासिल था, पर 1953 के बाद की सरकारें तो वस्तुतः केंद्र की कठपुतली मात्र थीं।

शेख के स्थान पर बख्शी 1953 से 1963 तक राज्य के प्रधानमंत्री रहे। 1957 और 1962 में भी बहुत सी विधानसभा सीटों पर उनकी पार्टी नेशनल कांफ्रेंस ने बिना मुकाबला जीत हासिल की थी। कुछ सीटें विपक्षी दलों को खासकर प्रजा परिषद (वस्तुतः जनसंघ की इकाई) को भी हासिल हुई थी। प्रजा परिषद ने 1957 में पांच और 1962 में तीन सीटें जीती थी। धांधली नहीं होती तो शायद कुछ और सीटें जीत लेते।

राजनीतिक-वित्तीय एकीकरण की तरफ बढ़े कदम

बख्शी शासन के दौरान एकीकरण की तरफ कुछ कदम उठाए गए। इसी दौरान राज्य में बाहरी लोगों के प्रवेश पर परमिट की बंदिश हटा दी गई थी। राज्य का देश के साथ वित्तीय एकीकरण भी किया गया। बख्शी के बाद थोड़े समय के लिए शमशुद्दीन प्रधानमंत्री बनाए गए। केंद्र सरकार की पसंद गुलाम मोहम्मद सादिक थे पर बख्शी के समर्थन के कारण शमशुद्दीन को बख्शी का उत्तराधिकारी बनाना पड़ा था और कुछ महीने बाद राज्य की सत्ता संरचना में केंद्र सरकार की इच्छा अनुसार बदलाव लाया गया। सादिक जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री पद पर आसीन हो गए। इसके साथ ही एकीकरण की प्रक्रिया भी तेज हो गई। सदरे रियासत और प्रधानमंत्री की जगह अन्य राज्यों की तरह राज्यपाल और मुख्यमंत्री का पद कर दिया गया। इसके अतिरिक्त नेशनल कांफ्रेंस का भी कांग्रेस के साथ एकीकरण कर दिया गया। पर इसके बावजूद चुनावों में धांधली की शिकायतें बरकरार रही। कश्मीर घाटी में शेख अब्दुल्ला की लोकप्रियता के सामने चुनावों में जीत बेमानी ही लगती थी। शायद इसी कारण सैयद मीर कासिम ने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देकर शेख अब्दुल्ला की वापसी का

रास्ता प्रशस्त किया और पार्थसारथी-बेग समझौते के तहत शेख अब्दुल्ला 1974 में कांग्रेस के समर्थन से राज्य के मुख्यमंत्री पद पर आसीन हुए।

1977 : राज्य में पहला निष्पक्ष चुनाव

गौरतलब है कि 1972 में कांग्रेस ने विधानसभा में 75 में से 62 सीटें जीती थी। 1977 में रियासत में पहली बार निर्बाध और निष्पक्ष चुनाव हुए जिसमें शेख अब्दुल्ला की पार्टी नेशनल कांफ्रेंस ने 75 में से 47 सीटों पर जीत हासिल की। यही नहीं इस चुनाव में अच्छी संख्या में मतदान हुआ। कश्मीर घाटी में 67 फीसदी मतदान हुआ। इस चुनाव की एक खास बात यह थी कि अलगाववादियों को मात्र एक सीट ही हासिल हुई, जबकि 1972 में उन्हें 5 सीटें मिली थी। 1982 में शेख अब्दुल्ला के देहांत के बाद फारूख अब्दुल्ला राज्य के मुख्यमंत्री बने और उनके नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस ने 1983 के विधानसभा चुनाव में एक बार फिर जीत हासिल की। घाटी में 70 फीसदी मतदान हुआ।

1987 के चुनाव में मुस्लिम यूनाइटेड फ्रंट चार सीटों पर विजयी रही। इसके अलावा उन्हें तीन या चार सीटों पर जीतने की उम्मीद थी। इनमें अमीरा कदल की सीट थी, जिसमें फ्रंट का उम्मीदवार युसूफ शाह था।

राजनीतिक उठापटक और हिंसा

रियासत में 1974 से 1984 के दौरान अमन, चैन और सौहार्दपूर्ण वातावरण था। पर 1984 में अचानक राज्यपाल बी.के. नेहरू को हटाकर जगमोहन को राज्यपाल नियुक्त कर दिया गया। बी.के. नेहरू 1981 से 1986 तक राज्यपाल रहे। इसकी वजह थी- राज्य में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के निर्देशानुसार दल-बदलू विधायकों के साथ कांग्रेस के गठजोड़ वाली सरकार को प्रतिस्थापित करने में मदद करना। इसके बाद नेशनल कांफ्रेंस की स्थिर सरकार को गिरा कर उसके 12 दलबदलू विधायकों और कांग्रेस के 26 विधायकों के समर्थन से गुलाम मोहम्मद शाह राज्य के मुख्यमंत्री बने। साथ ही हालात में एक नकारात्मक फर्क भी आ गया- कश्मीर घाटी में 1986 में पहली बार साम्प्रदायिक दंगे हुए। नेशनल कांफ्रेंस के संगठन पर गुलाम मोहम्मद शाह के काबिज होने की नाकाम कोशिश के बाद उन्होंने अलगाववादियों और साम्प्रदायिक तत्वों का इस्तेमाल करके राज्य में साम्प्रदायिक द्वेष की एक तरह से शुरुआत कर दी। अभी तक अलगाववादी और साम्प्रदायिक तत्व हाशिए पर थे और जन समर्थन न होने के कारण निष्क्रिय थे। पर शाह सरकार के गठन के बाद उनकी ताकत में काफी इजाफा हुआ।

पहली बार राष्ट्रपति शासन, फिर चुनावी धांधली

साम्प्रदायिक दंगों के कारण 1986 में शाह सरकार को बर्खास्त करके राज्य में पहली बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। शाह सरकार की बर्खास्तगी के बाद फिर उलट-फेर हुआ। कांग्रेस समर्थन से नवंबर 1986 में फारूख अब्दुल्ला एक बार फिर राज्य के मुख्यमंत्री बने। 1987 के चुनाव में नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस 75 में से 62 स्थानों पर विजयी रहे। इसी चुनाव में अलगाववादी समर्थक मुस्लिम यूनाइटेड फ्रंट एक अच्छी खासी ताकत बनकर उभरा था। पिछले दो चुनाव में कश्मीरी आवाम ने उन्हें नकार दिया था। पर शाह प्रशासन के 18 महीनों में इनका आवाम में समर्थन काफी बढ़ गया। 1987 के चुनाव में मुस्लिम यूनाइटेड फ्रंट चार सीटों पर विजयी रही। इसके अलावा उन्हें तीन या चार सीटों पर जीतने की उम्मीद थी। इनमें अमीरा कदल की सीट थी, जिसमें फ्रंट का उम्मीदवार युसूफ शाह था। चुनावी धांधली के बाद युसूफ शाह और यासिन मलिक के नेतृत्व में कश्मीर के कुछ इलाकों में हिंसक प्रदर्शन भी हुए। उनके अनुसार चुनावों में व्यापक धांधली और बूथों पर कब्जे करके उन्हें हराया गया था। हिंसक वारदातों में बड़ी संख्या में नौजवानों ने हिस्सा लिया, जिनमें से कई नौजवानों को गिरफ्तार किया गया और बिना मुकदमा चलाए उन्हें कई महीनों तक नजरबंद रखा गया।

आतंकवाद का उदय, कश्मीर का दुखदायी दौर

रिहाई के बाद बहुत से नौजवान पाकिस्तान चले गए और उनमें से कई जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रंट या हिजबुल मुजाहिदीन के सदस्य बन गए। उस वक्त अफगानिस्तान में तालिबान रूस समर्थित नसीर सरकार का तख्ता पलट चुके थे और इस तरह कश्मीरी आंतकियों के साथ बहुत से विदेशी आंतकी भी हो लिए। ये विदेशी आंतकी तालिबान के साथ कई साल तक आंतकी कार्रवाइयों में लिप्त रहे। इस तरह कश्मीर घाटी एक दुखदायी दौर की इबारत की साजिश पाकिस्तान की सक्रिय मदद से लिखी गई।

आतंकियों को 15 दिनों की खुली छूट, हत्याओं का दौर

इस इबारत की शुरुआत बहुलवाद की विरासत को तहस-नहस करने की कोशिश से की गई। जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट और हिज्बुल मुजाहिदीन की अगुआई में सितंबर 1989 से कश्मीरी हिंदुओं की सरेआम हत्याओं का सिलसिला शुरू हुआ। सरेआम मारे जाने वालों में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश, श्रीनगर दूरदर्शन के निदेशक इत्यादि थे। 04 जनवरी 1990 से 19 जनवरी 1990 तक आंतकी स्वचालित हथियारों को सरेआम लहराते हुए श्रीनगर की सड़कों पर बेरोक-टोक घूमते रहे। इसके साथ आजादी के नारे लगाती भीड़ थी। मस्जिदों से लाउडस्पीकरों से हिन्दुओं को कश्मीर छोड़ने के फरमान इन 15 दिनों में बार-बार दोहराए गए। उस वक्त फारूख अब्दुल्ला राज्य के मुख्यमंत्री और जनरल कृष्णराव राज्यपाल थे। देश के प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह और गृहमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद थे।

हालात को नियंत्रण में उद्देश्य से केंद्र ने जगमोहन को राज्यपाल नियुक्त किया। जगमोहन ने 20 जनवरी 1990 को कार्यभार संभाला और 19 जनवरी को

उनकी नियुक्ति के विरोध में फारूख अब्दुल्ला ने मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। इसी दौरान 20 जनवरी की रात गैरकानूनी हथियारों की कथित तलाशी के विरोध में गवाकदल में आई भीड़ को नियंत्रित करने के लिए सुरक्षा बलों की फायरिंग में 28 प्रदर्शनकारियों की मौत हो गई। इस कांड की जांच पचीस वर्षों तक बेनतीजा रही और इस केस को बंद कर दिया गया। मई 1990 में जगमोहन की जगह गिरीश चन्द्र सक्सेना राज्यपाल नियुक्त किए गए, पर हालात वैसे के वैसे ही बने रहे।

20 जनवरी 1990 का गोलीकांड : हिंसा का उत्प्रेरक

कुछ प्रेक्षक 20 जनवरी के गोली कांड को कश्मीरी युवकों के हिंसक गतिविधियों में लिप्त होने के लिए उत्प्रेरक मानते हैं। पर आंतकी गुटों में वे पहले भी भरती हो रहे थे। यह प्रक्रिया 1987 के चुनाव में धांधली और विरोधियों के दमन की प्रतिक्रिया में शुरू हुई थी और अब भी जारी है। इसमें कोई शक नहीं है कि कई बार सरकारी तंत्र के असंवेदनशील होने के कारण पैदा हुए असंतोष की प्रतिक्रिया में बहुत से नौजवानों ने हिंसा का मार्ग चुना है। इस प्रक्रिया को रोकने के लिए चुनावों का निर्बाध होने के साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की जरूरत है। संवेदनशील सरकारी तंत्र भी जरूरी है। कश्मीरी आवाम को उनके लोकतांत्रिक अधिकार मिलने चाहिए। 1977 में चुनाव निर्बाध थे और इस तरह राज्य में लोकतंत्र के साथ अमन और चैन का वातावरण था। 1987 में चुनाव धांधली से ग्रस्त थे। इस चुनाव में 1953 और 1975 की सरकारों की तरह ही चयन की प्रक्रिया अपनाकर लोकतंत्र को नकारा गया, जिसकी प्रतिक्रिया से मौजूदा हिंसक दौर पनपा है।

अफगानिस्तान में कामयाबी से आतंकियों के हौसले बुलंद

1990 से 1996 तक जम्मू-कश्मीर में राष्ट्रपति शासन रहा, क्योंकि इस दौरान आंतकी हिंसा अपने चरम पर थी। अफगानिस्तान में रूस समर्थित नसीर सरकार का तख्ता पलटने में कामयाबी के कारण आतंकी गुटों के हौसले बुलंद थे और उन्होंने सब तरह के हथकंडे अपनाने शुरू कर दिए। बहुलवाद की परंपरागत विरासत को मिटाने के लिए हिन्दुओं और सिखों के साथ बहुलवाद समर्थक नेशनल कांफ्रेंस के कार्यकर्ताओं की बेतहाशा हत्याएं हुईं। इन छह वर्षों में सुरक्षा बलों के साथ मुठभेड़ों में बड़ी तादाद में आंतकी मारे गए, इनमें बहुत से घुसपैठी विदेशी आंतकी थे। 1990 के दशक के शुरुआती 2-3 वर्षों में आजाद रियासत का समर्थक जेकेएलएफ गुट था। पर इसके बाद पाकिस्तान समर्थक हिजबुल मुजाहिदीन जैसे संगठन हावी हो गए।

अमन का रास्ता, 1996 का चुनाव

1994 के बाद बहुत से कश्मीरी आंतकियों ने अमन का रास्ता अपना कर नई

कश्मीर घाटी में हालात बहुत खराब है जिससे लोकतंत्र की बहाली आसान नहीं है। आंतकवाद से निबटने के मामले में भी सहमति नदारद है। इस वक्त सख्ती से इसे नियंत्रित करने की नीति अमल में लाई जा रही है।

जिंदगी की शुरुआत की, जिससे 1996 में राज्य में चुनाव कराए जा सके। पर बहुत से आंतकी सक्रिय रहे, जिनमें ज्यादातर विदेशी आंतकी थे। सरकारी सूत्रों के अनुसार 2002 में तकरीबन 3500 आंतकी सक्रिय थे। जिनमें से 2250 विदेशी और 1250 स्थानीय आंतकी थे। इनकी संख्या कम तो हो गई है पर भरती भी जारी है। यह सिलसिला कब और कैसे रूकेगा?

कश्मीर घाटी में हालात बहुत खराब है जिससे लोकतंत्र की बहाली आसान नहीं है। आंतकवाद से निबटने के मामले में भी सहमति नदारद है। इस वक्त सख्ती से इसे नियंत्रित करने की नीति अमल में लाई जा रही है। 1990 में भी सख्ती की नीति पर अमल करने के लिए जगमोहन को राज्यपाल नियुक्त किया गया था पर इस नीति से हालात बद से बदतर होते देख उन्हें मई 1990 में इस ओहदे से हटाना पड़ा था।

कश्मीर नीति कैसी होनी चाहिए

रियासत के भारत में विलय में शेख अब्दुल्ला की अहम भूमिका रही है। उस वक्त उनको जनता का प्रतिनिधि मानते हुए रियासत का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था। यही नहीं उनकी स्वायत्तता संबंधी शर्त भी मानी गई थी। जबकि 2019 में अनुच्छेद-370 और धारा 35ए को राज्य की जनता की रजामंदी के बिना ही निरस्त कर दिया गया। 1947 के बहुलवाद की जगह 2019 में केंद्र सरकार द्वारा थोपा गया बहुसंख्यकवाद हावी है। इस वक्त जनमत की अहमियत को पूरी तरह नकारा गया है।

कश्मीर समस्या को किस नजरिए से देखा जाए? इस वक्त तो एक प्रमुख मुद्दा नागरिकों के बुनियादी अधिकारों से जुड़ा है, जिसकी अवहेलना पिछले तीस वर्षों से हो रही है। पर इसकी भारतीय मीडिया में लगातार अनदेखी की जा रही है। इसको आतंकवाद के विरूद्ध मुहिम का कोलेट्रल या आनुषंगिक नुकसान कह कर बहुत हलके में लिया जाता है।

इस वक्त दो तरह के आंतकी गुट सक्रिय है- पाकिस्तान समर्थक और आईएसआई समर्थक। वे अपना असली उद्देश्य कम मौकों पर उजागर करते हैं और उन सबका नारा एक ही है- आजादी। उन सबको व्यापक जन समर्थन हासिल है और उनके समर्थक समान हैं ओर भारत विरोधी हैं।

गलतियों का यह सिलसिला काफी लंबा है। 1953 में शेख अबदुल्ला की गिरफ्तारी से शुरू हुई यह कड़ी काफी लंबी है। अनुच्छेद- 370 और धारा 35ए को हटाना इसी लंबी कड़ी का हिस्सा है। कश्मीर भारत का आंतरिक उपनिवेश नहीं है। कश्मीर में भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को निर्बाध और निष्पक्ष तरीके से बहाल करना लोकतांत्रिक संस्थाओं का दायित्व है। इस वक्त कश्मीरी आवाम आहत और निराश है। उनकी समस्याओं का संवेदनशीलता के साथ समाधान होना चाहिए। ■

सस्ती सरकारी बिजली पर भारी मंहगी निजी बिजली

राजेश कुमार

आम लोगों के वोट की मार्फत सत्ता पर काबिज होने वाली सरकारें, अब हर तरह की लाज-शर्म को तिलांजलि देकर बेशर्मी से पूंजी और उद्योगों के हित में खड़ी हो गई हैं। मध्यप्रदेश में इसकी बानगी ऊर्जा या बिजली क्षेत्र है, जिसमें सरकारी कारखानों में बनने वाली सस्ती बिजली को छोड़कर निजी कंपनियों की मंहगी बिजली खरीदी जा रही है। जाहिर है ए धतकरम आम लोगों की जेबों और सरकार के खजानों पर डाका डालेंगे। प्रस्तुत है, इस विषय को खुलासा करता ***राजेश कुमार*** का यह लेख।

देश और दुनिया कोरोना वायरस महामारी के सकंट को फैलने से बचाने में लगी है। लाखों मजदूर भूखे–प्यासे पैदल अपने-अपने गांवों की ओर लौट रहे हैं। यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि यह अनियोजित लॉकडाउन केवल मजदूर वर्ग के लिए है, लेकिन इसी दौर में सरकारें और निजी कंपनियां अपने काम बड़ी तेजी से निपटाने में लगी हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने अडानी की 'छिंदवाड़ा पेंच थर्मल पावर परियोजना' के साथ बिजली खरीद का करार किया है। इसकी सार्वजनिक जानकारी समाचार-पत्रों में 27 मई को तब मिली, जब मध्य प्रदेश सरकार ने इसे जाहिर किया। कोयले पर आधारित यह परियोजना 1320 मेगावाट क्षमता की है। जहां पूरी दुनिया कोयले से जुड़े सभी उद्योगों से दूर जा रही है, वहीं मध्य प्रदेश सरकार कार्बन उत्सर्जन में योगदान की यह योजना बना रही है। गौरतलब है कि वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण की गरज से किए गए अंतरराष्ट्रीय 'पेरिस समझौते' में भारत भी एक भागीदार है, यानि कि इसके तहत कोयला-आधारित उद्योगों को धीरे-धीरे घटाना हस्ताक्षर करने वाले देशों की प्राथमिक जिम्मेदारी है।

भारत सरकार के 'सांख्यिकी और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय' की 2019 की रिपोर्ट के अनुसार मध्य प्रदेश में 20,331 मेगावाट बिजली उत्पादन की क्षमता पहले से ही स्थापित है और उसकी मांग 9000 मेगावाट है। इस आधार पर प्रदेश में अतिरिक्त बिजली उपलब्ध है। तो फिर सवाल उठता है कि इसके बावजूद ऐसी कौन सी जल्दबाजी है, जिससे मध्य प्रदेश सरकार को अडानी से 1320 मेगावाट बिजली खरीदी का करार करना पड़ रहा है? इस तरह की बिजली खरीद से किसको फायदा होने वाला है? और इसके क्या महत्वपूर्ण कारण हैं?

मध्य प्रदेश में बिजली के बढ़ते वित्तीय घाटे जनता की जेब पर भारी पड़ रहे हैं, दूसरी तरफ राज्य अपने सरकारी बिजली घरों को बंद कर निजी बिजली कंपनियों से ऊंची दरों पर बिजली खरीद रही है। सार्वजनिक क्षेत्र की 'सतपुड़ा थर्मल पावर परियोजना' की 210 मेगावाट वाली इकाइयों को सरकार ने बंद कर दिया, जो कि सस्ती बिजली दे रही थी। प्रदेश में बरगी, बाणसागर व पेंच जैसी सरकारी क्षेत्र की जल-विद्युत परियोजनाएं

सस्ती बिजली उपलब्ध करवा सकती हैं। तो क्या उनसे बिजली नहीं ली जा रही?

इसके अलावा सरकार ने कई निजी ऊर्जा कंपनियों से नियत प्रभार (फिक्स चार्ज) के करार कर रखे हैं, जिसके कारण राज्य की जनता को सरकार की मार्फत हर साल बिना बिजली लिए हजारों करोड़ रुपये चुकाने पड़ रहे हैं। 'राज्य विद्युत नियामक आयोग' के 'टैरिफ आदेश : 2019-20' के अनुसार गत वर्ष सरकार ने नियत प्रभार (फिक्स चार्ज) परियोजनाओं को 2034 करोड़ रुपये देने का प्रावधान किया था, जो कि गैरजरूरी था। पिछले महीने राज्य सरकार ने नर्मदा घाटी में 26 साल पुरानी 'महेश्वर बिजली परियोजना' के साथ हुए समझौते को रद्द कर दिया है। इस परियोजना से 18 रुपये प्रति यूनिट बिजली का करार किया गया था। यह स्पष्ट करता है कि बिजली खरीद के ये करार राज्य बिजली वितरण कंपनियों को वित्तीय सकंट में धकेल रहे हैं। इनके कारण राज्य बिजली वितरण कंपनियां लगातार वित्तीय संकट का सामना कर रही हैं।

हालांकि बड़ी जल-विद्युत और सौर ऊर्जा परियोजनाओं से सस्ती बिजली मिलना इन परियोजनाओं से हुए सामाजिक व पर्यावरणीय नुकसान को सही ठहराता है। ऐसे में उन विकल्पों के बारे में सोचना होगा, जो बिना किसी बड़े सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक नुकसान के सभी को सतत और समान बिजली दे सकें। बिजली केवल एक वर्ग की विलासिता का साधन बनकर न रह जाए। अब तक जिन परियोजनाओं को सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक तबाही करके स्थापित किया गया है, उनको लोगों को सस्ती बिजली पहुंचाने में उपयोग किया जाना चाहिए।

'अखिल भारतीय पावर इंजीनियर्स फेडरेशन' के प्रवक्ता वी.के. गुप्ता का कहना है कि मध्य प्रदेश में औसत बिजली की मांग 9,000 मेगावाट और अधिकतम मांग 14,500 मेगावाट है। जबकि राज्य ने पहले ही 21,000 मेगावाट बिजली खरीद करारों पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। इस सकंट में यूनिट भर बिजली लिए बिना भी सरकारी वितरण कंपनियों को 2000 करोड़ रुपये से अधिक का भुगतान करना पड़ रहा है। जाहिर है, 'अडानी बिजली परियोजना' के साथ बिजली खरीद का समझौता एक गैरजरूरी समझौता समझा जा सकता है।

मध्य प्रदेश में बिजली परियोजनाओं का 'प्लांट लोड फैक्टर' पहले से ही कम था और कोरोना वायरस के कारण बिजली की मांग और भी कम हो गई है। ज्ञात हो कि राज्य बिजली वितरण कंपनियों ने बिजली खरीद के नौ करार कर रखे हैं। वर्तमान में बिजली की कम मांग को देखते हुए उनमें से चार निजी बिजली कंपनियां - टोरेंट पावर, बीएलए पावर, जेपी बीना पावर और एस्सार पावर बिजली की आपूर्ति नहीं करेंगी, लेकिन सरकारी वितरण कंपनी को इन निजी पावर कंपनियों से बिजली की एक यूनिट लिए बिना भी निर्धारित शुल्क का भुगतान करना पड़ेगा।

सौर ऊर्जा की प्रति यूनिट दर आज 2.94 रुपये प्रति यूनिट तक पहुंच गई है। तो फिर सवाल ये भी उठता है कि एक ओर तो केंद्र सरकार द्वारा सस्ती नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा दिया जा रहा है और दूसरी ओर राज्य सरकारें कोयला आधारित परियोजनाओं से बिजली खरीदने के करार क्यों कर रही है?

मध्य प्रदेश की पावर जनेरेटिंग कंपनी लिमिटेड के पूर्व अतिरिक्त मुख्य अभियंता राजेन्द्र अग्रवाल का कहना है कि राज्य के पास अगले 10 वर्षों के लिए अतिरिक्त बिजली उपलब्ध है। अडानी पावर की 'पेंच थर्मल एनर्जी लिमिटेड' के साथ बिजली खरीद का समझौता अम्बानी की 'सासन बिजली परियोजना' से भी अधिक महंगा है। 'सासन' की प्रति यूनिट दर 1.19 रुपये थी जबकि अडानी परियोजना की प्रति यूनिट दर 4 गुना, लगभग 4.79 रुपये प्रति यूनिट पड़ रही है, जो कि अब तक की सबसे ऊंची दर है। मनमानी और बिना पारदर्शिता के किया जा रहा यह करार 25 वर्ष की अवधि में राज्य वितरण कपंनी को एक लाख करोड़ रुपये से भी अधिक का नुकसान दे सकता है। यह भारत की टैरिफ नीति का पूरी तरह उल्लंघन है।

एक ओर राज्य सरकार कोयले पर आधारित महंगी बिजली परियोजनों से बिजली खरीदने के करार कर रही है और दूसरी ओर नवीकरणीय ऊर्जा आधारित परियोजनाओं जैसे सौर और पवन चक्की से मिलने वाली प्रति यूनिट बिजली के दाम पिछले कुछ सालों से लगातार गिरते जा रहे हैं। सौर ऊर्जा की प्रति यूनिट दर आज 2.94 रुपये प्रति यूनिट तक पहुंच गई है। तो फिर सवाल ये भी उठता है कि एक ओर तो केंद्र सरकार द्वारा सस्ती नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा दिया जा रहा है और दूसरी ओर राज्य सरकारें कोयला आधारित परियोजनाओं से बिजली खरीदने के करार क्यों कर रही है?

अडानी परियोजना के साथ बिजली खरीद का समझौता किसी भी नजरिए से सही नहीं है। बिजली क्षेत्र पहले से ही वित्तीय संकट का सामना कर रहा है। प्रदेश में स्थापित निजी बिजली कंपनियां पहले से ही वित्तीय संकट में हैं और सरकार से अपनी वित्तीय जमानत के लिए गुहार लगा रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में अडानी के साथ अतिरिक्त बिजली खरीद समझौता अनावश्यक है। यह राज्य सरकार और राज्य वितरण कंपनियों के साथ प्रदेश की जनता पर भी अतिरिक्त वित्तीय भार डालेगा। बिजली खरीद के इस समझौते के अनुसार सरकार को 25 वर्षों तक भुगतान करना पड़ेगा। जाहिर है, यह समझौता प्रदेश की जनता से बिजली की दर बढ़ाकर हजारों करोड़ रुपये वसूले जाने का रास्ता खोलेगा।

मध्य प्रदेश के आम नागरिक राज्य सरकार से मांग कर रहे हैं कि वह अडानी समेत ऐसी सभी परियोजनाओं के बिजली खरीद करारों को सार्वजनिक हित में तुरंत रद्द करे जो महंगे और गैरजरूरी हैं। राज्य की आम जनता और राज्य बिजली वितरण कपंनी पर अतिरिक्त वित्तीय बोझ बढ़ाने की बजाय सरकार को अपनी परियोजनाएं चालू करना चाहिए ताकि जनता को सस्ती बिजली मिल सके। ■

निराशाजनक है 20 लाख करोड़ के पैकेज की असलियत : सजप

कोरोना महामारी के संकट काल में समाजवादी जन परिषद की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने संचार उपकरणों का उपयोग करते हुए पिछले चार रविवार को जूम मीटिंग आयोजित की। इसमें 24 मई और 31 मई की मीटिंग में केंद्र सरकार द्वारा जारी 20 लाख करोड़ के जारी आर्थिक पैकेज पर चर्चा हुई। इस चर्चा के आधार पर यह नोट तैयार किया गया है ताकि सजप की राय इस मुद्दे पर स्पष्ट हो सके और सदस्यों को इस पर चर्चा करने और लोगों को जागरूक करने में मदद मिल सके।

मौजूदा आर्थिक संकट से उबरने के लिए प्रधानमंत्री ने 12 मई 2020 को 20 लाख करोड़ रुपये के पैकेज की घोषणा की, जिसको ब्योरेवार तौर पर वित्तमंत्री ने पेश किया। 12 मई की घोषणा से देश की जनता में एक आशा का संचार हुआ था पर पैकेज के आवंटन के बारे में जानते ही निराशा का माहौल बन गया है। 25 मार्च से देश में कोरोना महामारी को फैलने से रोकने के लिए लॉकडाउन लागू किया गया। इसके बाद काम-धंधा और कारोबार बंद हो जाने से देश की बहुत बड़ी आबादी के आय स्रोत बंद हो गए हैं और उनके पास बचा हुआ धन भी नहीं हैं। इस तरह तकरीबन 100 करोड़ आबादी की बुनियादी जरूरतों की आपूर्ति की व्यवस्था की जिम्मेदारी पूरी तरह से सरकार के ऊपर आ गई है।

लापरवाही और उदासीनता अप्रत्याशित : लॉकडाउन से जो हालात बने हैं वे अप्रत्याशित नहीं हैं। पर सरकार की लापरवाही और उदासीनता अप्रत्याशित है। विशेषकर प्रवासी मजदूरों की स्थिति सरकारी उदासीनता के कारण अत्यंत दयनीय हो गई है। करोड़ों प्रवासी मजदूर और उनके परिवार अपने गांव लौटने को मजबूर हो गए। इस दौरान बस और रेल जैसे यातायात के साधन दुर्लभ होने पर बहुत से परिवार पैदल ही कई सौ किलोमीटर के सफर पर निकल पड़े। जन आक्रोश के कारण सरकार ने बाद में रेल और बस की सुविधा उपलब्ध कराई, पर लॉकडाउन के दो माह बाद भी प्रवासी मजदूरों को इन सुविधाओं के लिए कई-कई दिन का इंतजार करना पड़ा। इन हालात में यह पैकेज निराशा बढ़ाने वाला ही है।

पैकेज का 16 लाख करोड़ तो बैंक ऋण है : 20 लाख करोड़ के पैकेज का झुनझुना भारत के उन 100 करोड़ से ज्यादा नागरिकों के लिए बहुत ही कष्टदायक है जिन्हें कोरोना महामारी ने बेबसी की हालत में ला खड़ा किया है। सरकार के पैकेज के अनुसार इस बजटीय वर्ष में तकरीबन 3 लाख करोड़ रुपये के बराबर खर्च का लक्ष्य है। इसके इलावा एक या सवा लाख करोड़ का खर्चा अगले दो-तीन वर्षों में ब्याज पर सब्सिडी पर हो सकता है। इसके बाद का पैकेज का लगभग 16 लाख करोड़ वह राशि है, जो बैंक ऋणों के रूप में है और जिसे पैकेज का हिस्सा बना दिया गया है। आखिर इसका औचित्य क्या है? वित्तमंत्री की ब्योरेवार तफसील में कहीं भी इसका खुलासा नहीं किया गया है।

राजकोषीय प्रोत्साहन तो बहुत ही कम : इस पैकेज में राजकोषीय प्रोत्साहन (फिस्क्ल स्टिम्युलस) तो बहुत ही कम है। इसका काफी बड़ा हिस्सा नकदी में नहीं है। बल्कि ये अनाज, दालों, गैस सिलेण्डर के रूप में हैं। इसमें 80 करोड़ जरूरतमंदों को

तीन माह तक अनाज और दालें देने की व्यवस्था की गई हैं। आठ करोड़ परिवारों को मुफ्त गैस सिलेण्डर देने की व्यवस्था की गई है। वैसे, अनाज का इंतजाम करने में सरकार को अतिरिक्त खरीद की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए क्योंकि अत्यधिक भंडारों को संभालने पर ही भारत सरकार हर साल 15 हजार करोड़ का अतिरिक्त व्यय करती आ रही है।

पुरानी योजनाओं को भी इसी में शामिल कर दिया : पुरानी योजनाओं के तहत 8 करोड़ 70 लाख किसानों को तीन किस्तों में दी गई 6000 रुपये की राशि भी इस पैकेज में शामिल कर दी गई हैं। बीस करोड़ महिलाओं को जनधन खाते में तीन माह तक हर माह 500 रुपये की राशि की अदायगी भी इसमें शामिल है। पर ये इमदाद जरूरत से बहुत कम हैं और ज्यादातर जरूरतमंदों को मदद मिल नहीं रही है। जरूरतमंद अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं और उनमें ज्यादातर के बारे में सरकार के पास जानकारी भी नहीं है। सही मायनों में इस समय जरूरतमंदों की संख्या तकरीबन 100 करोड़ है। आज के युग में सरकार के पास व्यक्ति स्तर पर डेटा संग्रह करना कोई बड़ी समस्या नहीं है, पर उपयुक्त डेटा न होने पर भी सभी जरूरतमंदों को सरकारी मदद के दायरे में लाया जा सकता है। अगर कोई गैर-आयकरदाता परिवार मदद मांगता है तो उसे सरकारी मदद मिलनी चाहिए।

तीन माह तक प्रति व्यक्ति 1500 रुपये मिले : अनाज के अलावा प्रति व्यक्ति के हिसाब से सभी को प्रति माह 1500 रुपये की राशि कम से कम तीन महीने तक मिलनी चाहिए। बाकी मुद्दों पर आवंटन बढ़ाना भी जरूरी है। प्रवासी मजदूर परिवारों के गांव में पुनर्वास के लिए आवश्यक मदद उपलब्ध कराना भी सरकार की जिम्मेदारी है।

ज्यादा तादाद में जांच जरूरी : इसके अलावा कोरोना की जांच की पर्याप्त और मुफ्त सुविधा अनिवार्य है। 25 मार्च को जब लॉकडाउन लागू किया गया था, तब कोरोना के 550 केस थे और 30 मई को इनकी संख्या एक लाख सत्तर हजार से ऊपर हो गई है। देश की गरीब जनता ने लॉकडाउन के असहनीय कष्ट भी झेले हैं पर सरकारी बदइंतजामी के कारण उन्हें कोरोना की मार भी झेलनी पड़ रही है। क्वारंटाइन की सुविधाओं को सुधारना आवश्यक है, जांच की कमी और क्वारंटाइन के मामले में सरकारी बदइंतजामी के कारण हालात बहुत बिगड़ चुके हैं। इस कारण भी हालात नियंत्रित करने के लिए सरकार द्वारा क्वारंटाइन की समुचित व्यवस्था करना अनिवार्य है। ज्यादा तादाद में जांच की व्यवस्था करना भी अनिवार्य है।

दस लाख करोड़ की फौरन व्यवस्था हो : जरूरतमंदों के कल्याण के लिए कम से कम दस लाख करोड़ रुपये के खर्च की फौरन व्यवस्था होनी चाहिए। हमारे विचार से इसकी व्यवस्था करना कोई मुश्किल बात नहीं है। ये देश की राष्ट्रीय आय के पांच फीसदी के बराबर है। इसकी आपूर्ति बजटीय घाटे से की जा सकती है। गौरतलब है कि भारत में पिछले 30 वर्षों में गैरबराबरी में बहुत इजाफा हुआ है और ऊपरी तबकों पर करों का बोझ काफी कम होता गया है। प्रत्यक्ष करों (जैसे कि आयकर, कॉरपोरेट कर) की दरें अपेक्षाकृत कम हैं और प्रत्यक्ष करों (जैसे कि जीएसटी) की दरें अपेक्षाकृत ज्यादा है। दूसरे शब्दों में निचले तबकों पर बोझ ज्यादा है। इस विषमता को दूर करने के लिए आयकर की दरें बढ़ानी चाहिए ताकि इससे आज के मुकाबले दोगुना राजस्व हासिल किया जा सके। इसके अलावा उत्तराधिकार कर (इन्हेरिटन्स टैक्स) और संपत्ति कर (वेल्थ टैक्स) शुरू करके धन की उगाही की जानी चाहिए।

बेमेल पैकेज को पेश किया गया : पर नीतिकार अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसियों के मानकों के अनुरूप बजटीय घाटे को नियंत्रित करते दीख रहे हैं। साफ है कि इसी कारण एक बेमेल पैकेज को पेश किया गया है, जिसमें राजकोषीय प्रोत्साहन (फिस्क्ल स्टिम्युलस) और बैंक ऋण को एकसमान दिखाया गया है। वैसे भी बैंकों के मानकों को अनदेखा करके ऋण दिलाने से अर्थव्यवस्था की विकास की गति बढ़ती नहीं है उल्टे बैंक और उनके ऐसे कर्जदार वापस न होने वाली संपत्ति या गैर निष्पादित संपत्ति की समस्या में उलझ सकते हैं।

एफडीआई की उम्मीद असंभव की खोज करना : प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) आने की उम्मीद करना मौजूदा हालात में असंभव की खोज निरर्थक कोशिश ही साबित होना तय है। 2018 के एक अध्ययन के अनुसार भारत एफडीआई के लिए वैश्विक कॉरपोरेट के टॉप 10 लक्ष्यों के अंतर्गत भी नहीं आता है। यह निष्कर्ष उपयुक्त मानकों पर आधारित सूचकांक से निकाला गया था। अफसरशाही की बेतुके नियंत्रणों और दखलअंदाजी, बेमेल नीतियों, मूलभूत सुविधाओं (इन्फ्रास्ट्रक्चर) का अभाव, बंदरगाहों में बेमतलब की देरी आदि के कारण देश में जमे-जमाए उद्योग उखड़ते रहे हैं। इसकी नवीनतम मिसाल सोलर सेल्स और सोलर पैनल हैं। असलियत यह है कि नीतिकार अगर देश के उद्योगों को ठीक से चलने दे तो एफडीआई अपने आप आकर्षित हो जाएगी।

कारोबारियों को सहयोग मिलना चाहिए : कारोबारी इस वक्त नकदी की समस्या से जूझ रहे हैं और इस दिशा में उन्हें बैंकों का उचित सहयोग मिलना चाहिए। पर ऐसा करते समय मानकों को भी अनदेखा नहीं करना चाहिए। बैंक ऋण ज्यादातर परिस्थितियों में राजकोषीय प्रोत्साहन (फिस्क्ल स्टिम्युलस) का स्थान नहीं हो सकते हैं और वर्तमान हालात में ऐसा होने की गुंजाइश भी बहुत कम है। गौरतलब है कि 2008 की महामंदी के दौरान सरकारी दबाव में दिए गए ऋण ही इस वक्त सरकारी क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) के गैर निष्पादित संपत्तियों का प्रमुख कारण बन गए हैं। कारोबारियों की ओवरड्रॉफ्ट की सीमा में मार्जिन बढ़ाकर अप्रैल 2020 में ही एक लाख सैंतीस हजार करोड़ तरलता (नकदी) की व्यवस्था कर दी गई थी। इस दिशा में सभी आवश्यक कदम उठाने चाहिए ताकि कारोबारियों को समय पर पर्याप्त तरलता (नकदी) उपलब्ध कराई जा सके।

पैकेज और सुधारों को अलग रखा जाए : इस पैकेज में कई सुधार भी जोड़ दिए गए हैं। वाजिब यहीं होगा कि पैकेज और सुधारों को अलग रखा जाए ताकि दोनों मामलों में वाजिब फैसले लिए जाएं। ■

व्यवस्थाओं की पोल खोलता कोरोना का कहर और सजप की पहल

विश्वव्यापी कोरोना महामारी के उत्पन्न हुए पांच महीने हो गए। भारत में इसका पहला मामला 30 जनवरी को प्रकट हुआ। इसके बाद से तमाम कोशिशों के बावजूद यह निर्बाध बढ़ता ही जा रहा है। दुनिया में इससे अब तक मरने वालों की संख्या दो लाख से ऊपर हो गई है। इसके सबसे ज्यादा शिकार विकसित देशों में हो रहे हैं। अमेरिका जैसी महाशक्ति कोरोना के आगे लाचार है और सबसे पीछे चलने के बाद भी वहां अभी सर्वाधित मौत के आंकड़े 55,000 से अधिक हो रहे हैं। विवादास्पद रूप से अपने उत्पत्ति स्थान में चीन में कितने लोग मारे गए हैं, इसका आंकड़ा हमेशा की तरह संदेहास्पद है। चीन जैसे कठोर नियंत्रित और एकदल आधिपत्य वाले देश में इसी नियंत्रण का नतीजा है कि बाहरी दुनिया इसके बताए आंकड़ों पर विश्वास नहीं कर रही और कई लोगों को तो आशंका है कि वहां मौत के आंकड़े करोड़ तक में जा सकते हैं। इस आशंका को बल तब और मिल जाता है जब चीन एक बार कोरोना मुक्त घोषित हो जाने के बाद फिर इस संक्रमण का शिकार हो रहा है। जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों ने अपने परंपरागत अनुशासन और दुरुस्त सरकारी व्यवस्था की बदौलत इसके संक्रमण को एक हद तक रोकने में सफल रहा है।

भारत और लगभग दक्षिण एशिया में कोरोना का कहर सबसे अंत में शुरू हुआ है। इस बीच दुनिया भर की सूचनाएं हमारे यहां आती रही हैं और इससे बचाव का हमारे पास पर्याप्त समय भी मिला है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, भारत में कोरोना का पहला मामला 30 जनवरी को केरल में उद्घाटित हुआ। इसके बाद सरकारी और व्यवस्थागत हीला-हवाली के साथ 24 मार्च तक चला। आरोप यह भी है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के 20 फरवरी के कार्यक्रम के लिए और बाद में मध्य प्रदेश में कांग्रेस सरकार गिराकर भाजपा सरकार बनाने की कवायद के लिए तब तक हीला-हवाली बनाए रखा। इस दौरान कोरोना भी अपना पांव पसारता रहा। अंत में 24 मार्च को बिना सर्वानुमति बनाए या इसकी पूर्व चर्चा किए सरकार की ओर से देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। उस समय देश में 657 संक्रमित थे। लॉकडाउन के एक महीना से अधिक बीत जाने के बाद आज संक्रमितों की संख्या 30,000 के पास पहुंच गई है तो मृतक संख्या 1000 के आसपास हैं।

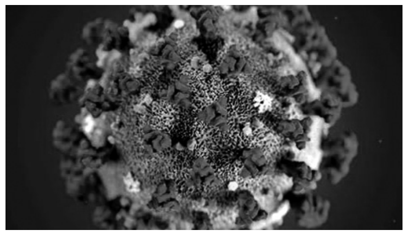

मई में राष्ट्रीय कार्यकारिणी की वर्चुअल मीटिंग में पारित सजप का दृष्टिकोण।

सांप्रदायिक उन्माद को बढ़ावा देने वाली खबरें भी तेज हो रही हैं। साथ ही विपक्षी दलों के शासन वाले राज्य सरकारों के साथ भेदभाव और विभिन्न नियमों को लागू कर सत्ता और व्यवस्था का केंद्रीकरण किया जा रहा है। इसी मौके का फायदा उठाकर पीएम केयर्स फंड गठित कर दिया गया है, जिसकी कोई जरूरत नहीं थी।

इस पूरे प्रकरण से एक बात साफ हो गई है कि हमारी सरकारी व्यवस्था बुरी तरह से लचर है और किसी संकट के समय इसके हाथ-पांव फूल जाते हैं। हम यहां सरकार को किसी प्रकार की मोहलत देने के पक्ष में इसलिए नहीं हैं कि सरकारों को हमेशा निर्णय लेने और व्यवस्था करने की छूट होती है। सरकारों के पास हर तरह की जानकारी और विशेषज्ञता सर्वोच्च स्तर पर होती है, जिसके लिए वह देश की जनता से पूरा खर्च वसूल करती है। सतर्क सरकारों ने इसका उपयोग किया है और मामले को नियंत्रण में भी रखा है। इस मामले में कई सरकारी त्रुटियां उजागर हुई हैं, जिसकी ओर हम लोगों का ध्यान

आकृष्ट करना चाहेंगे।

30 जनवरी के बाद से देश में करीब 15 लाख लोग विदेशों से आए। इन सबके साथ जांच और व्यवहार में लापरवाही हुई। सभी को केवल मुहर लगाकर छोड़ दिया गया। इनमें से कई तो संक्रमित होने के बावजूद पारासिटमोल से बुखार कम कर हवाई अड्डों से निकल आए। इससे बड़ी संख्या में कोरोना अपने स्वभाव के अनुसार संक्रमण करने में सफल रहा है।

जब सबसे पहला मामला देश में आया और इसके पहले से कोरोना दुनिया में तहलका मचा रहा था तो इसका अनुभव लेकर विदेश से आने वाले करीब 15 लाख लोगों को क्वारंटाइन किया जा सकता था। देश की सीमाओं को उसी समय सील कर बाहर से आने वाले को रोक कर संक्रमण को रोका जा सकता था। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। नमस्ते ट्रंप कार्यक्रम में 1000 के करीब अमेरिकी और विदेशी लोग अहमदाबाद में एकत्र हुए, जिनकी कोई जांच नहीं की गई। इनमें से कई संक्रमित रहे होंगे। यह इस बात से भी साबित होता है कि गुजरात में आज की तारीख तक जो 3000 लोग संक्रमित हैं, उनमें 2000 से अधिक लोग केवल अहमदाबाद में हैं। इसी तरह दिल्ली के निजामुद्दीन में स्थित तबलीगी जमात के कार्यक्रम में दो हजार से अधिक विदेशियों को निर्बाध न केवल आने दिया गया बल्कि जमात द्वारा सूचित किए जाने के बाद भी उन्हें वहां से जाने से नहीं रोका गया और न ही वहां बचे लोगों की जांच की व्यवस्था की गई। उल्टे इस घटना का दुरुपयोग कर मामले को सांप्रदायिक रंग देकर देश में उन्माद का वातावरण सत्ताधारी गठबंधन और आरएसएस ने पैदा किया।

अगर यह लापरवाही नहीं होती तो शायद इतने लंबे लॉकडाउन की जरूरत ही नहीं पड़ती। केरल में मामले इसलिए नियंत्रण में आ गए, क्योंकि वहां लॉकडाउन को गंभीरता से लिया गया था। तकरीबन 1,25,000 मामलों को पर्याप्त वॉलेंटियर की मदद से कड़ाई से निगरानी की गई। केरल में चार अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं और अन्य राज्यों से ज्यादा जोखिम हो सकता था पर प्रभावी क्वारंटाइन से हालात पर नियंत्रण कर लिया गया। देश के बाकी हिस्सों में भी ऐसा किया जा सकता था। भारत में तकरीबन 9 लाख आशा कार्यकर्ता है, इनके अलावा आंगनवाड़ी वर्कर, एएनएम बड़ी संख्या में इस काम में लगाए जा सकते थे।

लेकिन असलियत है कि देश की सरकारी स्वास्थ्य सेवाएं जर्जर हो चुकी है। पीएचसी नाममात्र के हैं। वहां कार्यकर्ता हैं तो दवाएं व जांच की मूलभूत सुविधाएं नदारद हैं। यह पिछले तीस सालों में नव-उदारवादी नीतियों के कारण स्थापित निजी अस्पतालों को बढ़ावा देने का नतीजा है।

अमेरिका में बीमा राशि के अनुसार निजी बीमा कंपनियां इलाज का गैर बराबर इंतजाम करती है। बीमा राशि कर्मचारी या व्यक्ति देते है। बुजुर्गों, विधवाओं, महिला मुखिया वाले परिवार का भी खर्च सरकार करती है। इसके बाद भी 12 फीसदी आबादी का इलाज के लिए बीमा नहीं होता है।

जब 657 मामले थे तब सरकार ने बिना किसी जिम्मेदारी के देशभर में पूर्ण लॉकडाउन घोषित कर दिया और लाखों प्रवासी मजदूरों को रोजगारविहीन कर सड़कों पर भूखे-प्यासे मरने को छोड़ दिया। लेकिन जब प्रतिदिन 1400 से 1700 तक नए मामले आ रहे हैं, ऐसे में लॉकडाउन सरकार ने कुछ सामान को छोड़ कर सभी दुकानों को खोलने की छूट दे दी। कारखानों और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के लिए सशर्त छूट पहले ही दी जा चुकी है। सरकार के इन निर्णयों का क्या अर्थ लगाया जाए? ऐसे ही कई सवाल उठ रहे हैं। मसलन,

– कोरोना वायरस का प्रसार अब शिथिल पर गया है? तो फिर रोज 1400 से 1700 तक केस कैसे रिपोर्ट हो रहे हैं?

– कोरोना को रोकने के लिए सम्पूर्ण लॉकडाउन की आवश्यकता नहीं है? तो फिर पिछले एक महीने का लॉकडाउन अज्ञान के कारण लगाया गया?

– क्या हमने इस एक महीने में कोरोना से लड़ने की तैयारी कर ली? फिर अभी तक मात्र प्रति मिलियन (दस लाख में) 420 (झारखण्ड राज्य का यह आंकड़ा सबसे कम मात्र 60 का है) जांच ही क्यों हुए, जबकी बाकी सभी प्रभावित देशों ने अपनी जनसंख्या के प्रति मिलियन 7000 से 27000 तक जांच किए हैं।

– यदि हमने पीपीई (व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण) की व्यवस्था कर ली है तो सरकारी अस्पतालों के ओपीडी (ब्राह्य मरीज विभाग) क्यों बंद हैं? मरीजों को अन्य बीमारियों का इलाज क्यों नहीं मिल पा रहा?

केंद्र एवं राज्य सरकारें (केरल और गोवा को छोड़कर) अपनी नाकामी को छुपाने के लिए लॉकडाउन को ढाल बना रही है। लेकिन इस तरह के लंबे लॉकडाउन से कोरोना तो नहीं ही रुकेगा, अर्थव्यवस्था जरूर तबाह हो जाएगी। दिहाड़ी मजदूर और उनका परिवार भूख से बीमार होंगे/ मरेंगे, कोरोना के अलावा दूसरी बीमारियों से पीड़ित इलाज के अभाव में मरणासन्न होंगे/ मरेंगे और बहुत सारी समस्याएं पैदा होंगी। इसके साथ ही लॉकडाउन की पूरी कीमत असंगठित क्षेत्र के 60 फीसदी आबादी से वसूली जा रही है, जिनकी दिहाड़ी चली गई और आगे भी आजीविका का कोई साधन नजर नहीं आता। लॉकडाउन के कारण आने वाली मंदी का खामियाजा भी उन्हें ही सबसे ज्यादा भुगतना पड़ेगा। इनके पास न संसाधन है और ना ही भविष्य के लिए बचाया गया धन। सरकारी पैकेजों में इनकी बुनियादी जरूरतों को भी अनदेखा किया गया है।

सांप्रदायिक उन्माद को बढ़ावा देने वाली खबरें भी लगातार तेज हो रही हैं। इसके साथ ही विपक्षी दलों के शासन वाले राज्य सरकारों के साथ भेदभाव और विभिन्न नियमों को लागू कर सत्ता और व्यवस्था का केंद्रीकरण किया जा रहा है। इसी मौके का नाजायज फायदा उठाकर पीएम केयर्स फंड गठित कर दिया गया है, जिसकी कोई जरूरत नहीं थी। क्योंकि प्रधानमंत्री आपदा राहत कोष पहले से ही देश में मौजूद है, जिसमें सरकारी लोगों के अलावा विपक्ष के नेता और कई अन्य प्राधिकारी होते हैं। पीएम केयर्स के द्वारा

सरकार ने इसे अपने कब्जे में कर लिया है। इसका न तो कोई ऑडिट होने वाला है और न ही इसकी जानकारी स्वच्छ व साफ रहेगी। आगे वित्तीय इमरजेंसी की भी आशंका जताई जा रही है।

अब जबकि मामला यहां तक बढ़ गया है और आशंका है कि आगे देश में इसका संक्रमण तेजी से फैलेगा, एक बार फिर सरकारों से और प्रबुद्ध जनों से आग्रह है कि दूसरे देशों के अनुभव के आधार पर कोरोना से लड़ाई में हम निम्न प्राथमिकताओं के आधार पर आगे बढ़ने का माहौल बनाएं-

1. हॉट स्पॉट इलाकों में हर व्यक्ति की जांच की व्यवस्था की जाए।

2. पीपीई किट की समुचित व्यवस्था कर स्वास्थ्यकर्मियों को संक्रमित होने से बचाया जाए। अस्पतालों और वहां के ओपीडी को चालू किया जाए।

3. सरकार निजी अस्पतालों को सुविधाएं देना बंद करे तथा सरकारी स्वास्थ्य सेवा ढांचे को मजबूत करे, उस पर ज्यादा खर्च करे। डॉक्टरों की फीस पर अंकुश लगाना चाहिए, उनके दाम सीजीएचएस फीस से ज्यादा हरगिज नहीं होना चाहिए।

4. जीडीपी का कम से कम 12 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकारी तौर पर खर्च की योजना बनें। यह योजना विकेंद्रित रूप में यानी केंद्र, राज्य, जिला परिषद और ग्राम पंचायत सरकारों के स्तर पर होना चाहिए। इस राशि में हरेक स्तर को 3% का स्वतः आवंटन मासिक किश्तों में हो और जिम्मेदारियों का भी साफ बंटवारा हो। महामारी पर किए गए खर्च इसके बाहर आपदा नियंत्रण कोष से हो।

यह 12% अच्छे गरीब देशों के दशकों का अनुभवजन्य आंकड़ा है। उन देशों ने स्वास्थ्य सुधार कर तुरंत फायदा लिया और राष्ट्रीय आय बढ़ाई।)

5. आपात अवस्था में निजी अस्पतालों में सभी का निःशुल्क इलाज होना चाहिए। आयुष शाखाओं को मजबूत किया जाए और उन्हें पर्याप्त मदद दी जाए।

6. वैश्विक महामारी का सामना करने के लिए 'राष्ट्रीय / राज्य एकता सरकार' भी अनिवार्य जरूरत है। अन्यथा इस आपदा का सामना करने की राजनीतिक ताकत, सही 'राष्ट्रीय मानसिक वातावरण' और निकम्मी - असंवेदनशील अफसरशाही की सक्षमता नहीं बन सकते हैं। सजप इसकी मांग पहले ही कर चुकी है। सभी सरकारें विपक्ष के नेताओं को औपचारिक रूप से मंत्रिमंडल में शामिल कर इसका पहला और छोटा कदम लेकर केंद्र और राज्य सरकारें इस ढांचे को तुरंत लागू करें।

बेरोजगारी के दिनों तक गरीब तबकों और किसानों को राशन, बिजली, मुफ्त दी जाए और कृषि ऋणों को माफ किया जाए। पीडीएस और पीएचएस सेवाओं का विकेंद्रीकरण हो। नव-उदारवादी व्यवस्था को खत्म किया जाए।

गौरतलब है कि अमेरिका और जापान दोनों देशों में निजी अस्पताल है पर जापान में फीस आदि पर सरकार ने एक सीमा निर्धारित की है और सभी के आय का एक निश्चित हिस्सा स्वास्थ्य निधि में काटा जाता है और जो असमर्थ है उनका बीमा सरकार करवाती है। इस तरह सभी के इलाज की बराबर व्यवस्था की गई है।

दूसरी तरफ अमेरिका में बीमा राशि के अनुसार निजी बीमा कंपनियां इलाज का गैर बराबर इंतजाम करती है। बीमा राशि कर्मचारी या व्यक्ति देते है। बुजुर्गों के लिए पूरा खर्च सरकार करती है। विधवाओं, महिला मुखिया वाले परिवार का भी खर्च सरकार करती है। इसके बाद भी 12 फीसदी आबादी का इलाज के लिए बीमा नहीं होता है। दुनिया में अमेरिका राष्ट्रीय आय का सबसे ज्यादा का 18 फीसदी स्वास्थ्य पर खर्च करता है फिर भी यह लचर है। अरबों डॉलर कदाचार के मुकदमे अदालतों में चल रहे हैं। यहां ज्ञातव्य है कि पिछले तीस सालों में हम इसी लचर व्यवस्था की तरफ बढ़ रहे हैं। निजी अस्पतालों पर आधारित आयुष्मान भारत योजना इन खामियों से भरा है।)

7. लॉकडाउन कड़ाई से उन्हीं जगहों पर लागू किया जाए जहां कोरोना के संक्रमित पाए गए हों। अनावश्यक जगहों पर लॉकडाउन करने से बीमार अस्पतालों तक नहीं पहुंच पाएंगे और कोरोना संक्रमितों की पहचान टलती जाएगी। ध्यान रहे 80% कोरोना संक्रमितों में किसी भी प्रकार के लक्षण नहीं होते। सभी जगहों से ज्यादा से ज्यादा लोगों के सैम्पल जांच होने आवश्यक हैं।

8. बुलेट ट्रेन, सेंट्रल विस्टा, एनपीआर जैसे फिजूलखर्ची वाले प्रोजेक्ट निरस्त कर उन पैसों को स्वास्थ्य सुविधा सुधारने के लिए आवंटित किया जाए।

9. वैश्विक महामारी कोरोना, इतिहास का पहला और अपने आपमें अनूठा महासंकट है, जिसे जनता के हर तबके के साथ मिल कर ही हराया जा सकता है। इसमें लगातार और सही जानकारियां साझा करना, समाज के सभी वर्गों/ समूहों को विश्वास में लेना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना, अंधविश्वास और अफवाहों को फैलने से रोकना और सम्प्रदायिक सौहार्द बनाए रखना जरूरी है।

10. असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए रोजगार सृजन के लिए मनरेगा जैसी योजनाओं में पर्याप्त राशि आवंटित की जाए और इनका पिछला भुगतान भी दिया जाए। निचले स्तर पर योजनाएं बनने से पलायन रुकेगा। इन मजदूरों के खातों में प्रति व्यक्ति 10,000 रुपये तत्काल दिए जाएं।

11. बेरोजगारी के दिनों तक गरीब तबकों और किसानों को राशन, बिजली, मुफ्त दी जाए और कृषि ऋणों को माफ किया जाए। पीडीएस और पीएचएस सेवाओं का विकेंद्रीकरण हो। नव-उदारवादी व्यवस्था को खत्म किया जाए।

12. वैश्विक महामारी का सामना करने के लिए 'राष्ट्रीय/राज्य एकता सरकार' अनिवार्य जरूरत है। अन्यथा इस आपदा का सामना करने की राजनीतिक ताकत, राष्ट्रीय मानसिक वातावरण नहीं बन सकते हैं न ही निकम्मी-असंवेदनशील अफसरशाही इसे संभाल सकती है। विपक्ष को औपचारिक रूप से मंत्रिमंडल में शामिल कर केंद्र और राज्य सरकारें इस ढांचे को तुरंत लागू करे। ■

राष्ट्रीय आपदा में राष्ट्रीय सरकार

अप्रैल में व्हाट्सऐप ग्रुप पर हुई राष्ट्रीय कार्यकारिणी की चर्चा में पारित सजप का दृष्टिकोण।

सन् 2020 में भारत अन्य देशों की तरह एक विनाशकारी खतरे में कोरोना वायरस की वैश्विक महामारी के कारण आ गया है। बीसियों देशों के कोरोना महामारी के आंकड़ों, विश्लेषणों और ज्ञात सुरक्षा उपायों से निष्कर्ष निकला है कि भारत में करोड़ों लोग संक्रमित होंगे और लाखों लोगों की मौत होगी। साथ ही देश की अर्थव्यवस्था, सामाजिक सद्भाव, राजनीतिक स्थिरता, कानून- व्यवस्था और खाद्य, सीमा तथा स्वास्थ्य सुरक्षा करीब करीब ढेर हो जाएगी। देश का विशिष्ट वर्ग प्रशासक, राज्यतंत्र और वैज्ञानिक वर्ग अब तक इन खतरों को नहीं समझ रहे हैं, और वस्तुस्थिति को जनता से छिपा रहे हैं।

संसदीय और राष्ट्रपति प्रणाली की कई लोकतान्त्रिक सरकारें चरम हालातों लम्बा युद्ध, राष्ट्रव्यापी महामारी वैश्विक आर्थिक युद्ध जलवायु महाविपत्ति जैसी मुसीबतों में अकुशल, दुविधा ग्रस्त, और निर्भीक निर्णय में अक्षम हो जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि इन सरकारों के पास सम्पूर्ण जनता का समर्थन और उसके प्रतिनिधियों की सहभागिता नहीं होती है।

ऐसे हालातों में 'राष्ट्रीय सरकार' बनाने का विश्व के विभिन्न देशों में कई उदाहरण रहे हैं। इन सरकारों ने अपने देश और समाज को भीषण संकट और खतरों से उबारने में सफलता पाई। इन राष्ट्रीय सरकारों में संसद की बहुमत वाली पार्टी विपक्षी पार्टियों को भी सरकार में शामिल करती है। सभी पार्टियों के लोग अपने अंर्तविरोधों को कुछ वर्षों के लिए छोड़ देते हैं। सभी दल मंत्रिमंडल में शामिल होते हैं और तात्कालिक भीषण हालातों से देश को उबारने की कोशिश में लग जाते हैं।

हम नीचे ऐसी 'राष्ट्रीय एकता सरकारों' के कुछ उदाहरण देखेंगे।

1. 1861 में शुरू हुए अमेरिका के गृह युद्ध के समय संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रीय एकता सरकार बनी, जिसमें बहुमत वाली रिपब्लिकन पार्टी के अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति बने और विपक्षी डेमोक्रेटिक पार्टी के ऐंडरू जॉनसन उपराष्ट्रपति बने। दोनों पार्टियों की सम्मिलित सरकार ने गृहयुद्ध में गोरे नस्लवादी राष्ट्रतोड़क विद्रोहियों को हराकर नस्लवाद को हराया और अमेरिकी राष्ट्र को टूटने से बचाया।

2. 1930 की भीषण आर्थिक मंदी के समय 1931-35 में ब्रिटेन में रैमसे मैकडोनाल्ड के प्रधानमंत्री काल में बहुमत वाली लेबर पार्टी ने विपक्षी लिबरल पार्टी के साथ राष्ट्रीय सरकार बनाई।

इसी 'राष्ट्रीय एकता' के उम्मीदवारों ने 1935 का चुनाव मिलकर लड़ा और आंशिक राष्ट्रीय एकता सरकार ने द्वितीय विश्व युद्ध के अंत 1945 तक ब्रिटेन पर शासन किया।

3. दक्षिण अफ्रीका में 1994 में हुए चुनाव के बाद उन सभी दलों के सांसदो को सरकार में शामिल किया गया, जिन्हें 10% से ज्यादा वोट आए थे। यह सरकार 1999 तक चली।

4. नेपाल में 2015 के भीषण भूकंप के बाद सभी बड़ी पार्टियों ने मिलकर सरकार और संसद चलाई। इसी दौरान बरसों से मतभेदों मे फंसे हुए नेपाल के नए संविधान को भी बनाया और अंगीकृत किया गया।

5. इटली में 1946 से 2014 के बीच 7 (सात) बार विभिन्न पार्टियों ने मिलकर राष्ट्रीय एकता सरकार चलाई।

6. इजरायल में कई बार ऐसी राष्ट्रीय एकता सरकार बनी है। सबसे ताजा प्रयोग अभी 27 मार्च 2020 का है।

7. ऐसी सरकारें अफगानिस्तान, कनाडा, क्रोएशिया, एस्टोनिया, ग्रीस, हंगरी, केन्या, लेबनान, फिलिस्तीन, श्रीलंका, सूडान, जिम्बाब्वे वगैरह में भी बनी है।

आज भारत में इतिहास का तकाजा है कि केंद्र में इस प्रकार की 'राष्ट्रीय एकता' सरकार तुरंत बने।

अभी की कोरोना महामारी के अभूतपूर्व संकट के समय बहुमत वाले केवल एक गठबंधन की सरकार अशक्त रहेगी और कठोर सही निर्णय लेकर उसका कार्यान्वयन नहीं कर पाएगी। उस दक्षता, निर्भीक निर्णयों और कार्यान्वयन के अभाव में देश और जनता को बीमारी, भूख, मौतें, बेरोजगारी और आर्थिक संकटों की भयानक कठिनाइयों और पीड़ा से गुजरना होगा।

इसलिए अविलंब ऐसी एक 'राष्ट्रीय एकता सरकार' बनाने के लिए मैं एक फार्मूला प्रस्तावित कर रहा हूं। मंत्रिमंडल में 100 (सौ) सदस्यों की जगह मानकर गणना करें। लोकसभा चुनाव (2019) में जिस किसी पार्टी को 1 (एक) प्रतिशत से ज्यादा मत मिले थे; उस हरेक पार्टी के प्राप्त वोट प्रतिशत के अनुपात में मंत्री रखे जाएं। 2019 के चुनाव नतीजे बताते हैं कि 13 (तेरह) दलों को एक प्रतिशत से ज्यादा मत आए थे। इन सभी दलों के सदस्यों को लेकर मंत्रिमंडल का पुनर्गठन किया जाए। एक सरसरी गणना बताती है कि केवल 80 सदस्यों का ही मंत्रिमंडल बन सकेगा। क्योंकि छोटे दलों (1% से कम वोट वाले) और स्वतंत्र उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त मतों के आधार पर कोई प्रतिनिधि मंत्रिमंडल में शामिल नहीं होगा।

भारत की 130 करोड़ जनता को मौत, बीमारी और आर्थिक बर्बादी से बचाने के लिए और एक समावेशी सक्षम राजनीतिक नेतृत्व तैयार करने के लिए यह संभव प्रकिया है। संसद में बहुमत प्राप्त दल इस चुनौती को तुरंत स्वीकार करें और भारत तथा विश्व इतिहास मे एक ऊंची जगह पाएं। ■

बेतुके फरमान

राजेन्द्र चौधरी

एक दिन के अखबार में खबर आई कि हरियाणा की बसों में टिकट केवल ऑनलाइन बिकेंगी। पहले दिन के अखबार में खबर थी कि रेलवे ने अब स्टेशन पर टिकट आरक्षण शुरू कर दिया है। क्या रेलवे की ऑफलाइन टिकट बिक्री से कोरोना नहीं फैलता, पर बस की भौतिक टिकट बिक्री से फैलता है? इस अंतर की कोई तुक समझ में आती है क्या? और अगर सरकार चाहती है कि बिना टिकट के कोई बस अड्डे में न जाए, तो रेलवे की तर्ज पर बस अड्डे के गेट पर ही टिकट बिक्री की व्यवस्था कर दे। अगर सरकार ऐसी नई व्यवस्था नहीं कर सकती, तो आम जनता से कैसे आशा कर सकती है कि वो बसों की टिकट की ऑनलाइन खरीदी की व्यवस्था कर ले?

हरियाणा का दूसरा सरकारी फरमान है कि सब सरकारी दफ्तर तो खुलेंगे पर उनमें जनता की आवाजाही नहीं होगी, कोई पब्लिक डीलिंग नहीं होगी। तो क्या सब सरकारी दफ्तर ऐसे होटल हैं, जिनमें केवल वहां काम करने वालों के लिए ही खाना पकता है? ऐसे सरकारी दफ्तरों की किसको जरूरत है? बिना लोगों के पैसे से चलने वाले दफ्तर! फिर रात का कर्फ्यू? क्या रात में कोरोना का वायरस ज्यादा घातक हो जाता है या कर्फ्यू इसलिए लगा है कि अखबारों में ये सुर्खियां बन सके कि 'कर्फ्यू' के दौरान चोरों ने चटकाए 6 दुकानों के ताले'? हरियाणा ने जब दिल्ली से आवाजाही पर रोक लगा रखी थी तो दिल्ली की ओर से कोई रोक-टोक नहीं थी और अब जब हरियाणा ने दिल्ली से आवाजाही खोल दी है तो दिल्ली ने रोक दी है। कल तक के आदेशों को ध्यान में रखकर अगर सुबह बिना अखबार पढ़े घर से निकल पड़ें तो भगवान ही आप का रखवाला है क्योंकि कोई पता नहीं कि किस आदेश में क्या बदलाव हो गया हो।

ऐसे बेतुके तुगलकी फरमानों की सूची लम्बी है। इससे पहले आया था कि नाई के पास शेव या कटिंग करवाने के लिए अपना ब्रश और तौलिया लेकर जाना होगा। दो पहिया वाहन में दूसरी सवारी नहीं होगी और अपनी कार में भी कुल तीन लोग ही हो सकते हैं। यानी मियां, बीबी और बच्चे एक घर में तो इकट्ठे रह सकते हैं पर इकट्ठे अपनी कार में कहीं आ-जा नहीं सकते क्योंकि कोरोना फैलने का डर है। शुक्र है अब ये आदेश रद्द हो गए हैं। खैर गलती, गलत फैसला किसी से भी हो सकता है। इसका इलाज है जनता को अपनी आवाज़ उठाने का मौका मिले ताकि शासक को अपनी गलतियों का पता चल सके और सुधार हो सके। पर अब तो यह भी संभव नहीं है क्योंकि लॉकडाउन खुलने के पहले दौर में भी बैठक करने पर रोक जारी है और अदालतें भी लगभग बंद हैं।

लोकतंत्र में यह जरूरी है कि जनता मिल बैठ के विचार कर सके, अनुभव बांट सके। बिना मिले-जुले तो सब काम ऑनलाइन नहीं हो सकते; तभी तो सरकारी दफ्तर खुले हैं और सब सुविधाओं के बावजूद मोदी भी अपने मंत्रिमंडल के साथ आमने-सामने बैठक करते हैं। लोग मिलेंगे नहीं, विचार-विमर्श नहीं करेंगे तो समाज की आवाज कैसे सामने आएगी? बिना सामाजिक विमर्श के तो वो एक व्यक्तिगत राय रहेगी, जैसे ये आलेख है। फिर यह सवाल भी है कि अगर शादी-ब्याह के लिए 50 लोग इकट्ठे हो सकते हैं तो सामाजिक या राजनीतिक मुद्दों पर विचार करने के लिए क्यों नहीं इतने लोग इकट्ठे हो सकते? या कोरोना का वायरस शादी समारोह में हमला नहीं करता पर बाकी बैठकों में करता है? सरकार और संस्थाओं में कमेटियां बनती हैं, ताकि विशेषज्ञों की राय मिल सके या स्वतंत्र तरीके से किसी विषय पर विचार हो सके। पर बहुत बार होता यह है कि कमेटी निर्णय वही सुनाती है, जो कमेटी बनाने वाला चाहता है। ऐसे बहुत बार होता है पर यह परदे के पीछे से होता है। औपचारिक व्यवस्था तो यही है कि जिसको निर्णय लेने का अधिकार है वह स्वतंत्र रूप से स्व-विवेक से निर्णय ले। पर यहां तो खुलेआम लिखित में सरकारें जिला मजिस्ट्रेट को कह रही हैं कि अपने यहां इतने बजे से इतने बजे तक का कर्फ्यू लगाओ। संभव है ऐसे आदेश देने की कोई कानून-व्यवस्था हो पर यह सामान्य विवेक के प्रतिकूल है। अगर देश में कर्फ्यू लगाने का फैसला केंद्रीय या राज्य के गृहसचिव को लेना है, तो वे लें एवं लगा दें देश/राज्य में कर्फ्यू। पर अगर यह आदेश जिला मजिस्ट्रेट को देना है तो यह उसका निर्णय होना चाहिए न कि हस्ताक्षर उसका और फरमान किसी और का।

न्याय प्रणाली में एक 'स्पीकिंग ऑर्डर' होता है यानी सकारण आदेश, ऐसा आदेश जो निर्णय देने के साथ-साथ तर्कपूर्ण ढंग से उस निर्णय की सफाई भी देता है, उसे न्याय संगत भी ठहराता है। क्या सरकारी अधिकारियों से यह आशा करना अनुचित होगा कि वो भी सकारण आदेश दें और बताएं कि रात के कर्फ्यू की जरूरत क्या है? दुकानों की सामान्य समय-सीमा को कम करने से कोरोना की रोकथाम में क्या सहायता मिलती है? ■

संगठन समाचार : सजप और वियुस का दो दिवसीय दिल्ली शिविर

समाजवादी जन परिषद, दिल्ली और विद्यार्थी युवजन सभा की ओर से 18-19 दिसंबर 2019 को गांधी स्मारक निधि राजघाट में समता संस्कार शिविर का आयोजन किया गया। इसमें दिल्ली के तीन कॉलेजों के स्नातक, एमए और कुछ उत्तीर्ण कर चुके छात्र-छात्राओं ने हिस्सा लिया। 18 को नियत समय सुबह के 10 बजे से 15 मिनट देर से शुरू यह शिविर 19 की शाम अपने नियत समय शाम के 5:30 पर संपन्न हुआ। इस बीच कुछ आठ सत्र रखे गए। इनमें प्रशिक्षकों ने विषय की प्रस्तुति की और इन पर छात्रों से चर्चाएं हुईं। दोनों दिन 20 छात्र शिविर में उपस्थित हुए।

वैसे 32 छात्रों ने सहमति दी थी। लेकिन दिल्ली में इसी बीच नागरिकता संशोधन कानून को लेकर हुए हिंसक आंदोलन के कारण कई इलाकों से आवागमन का साधन नहीं मिल सका। साथ ही कुछ छात्राओं के घर वालों द्वारा आशंकित होकर उन्हें रोक देने से 12 प्रतिभागी शामिल नहीं हो पाए। इस कार्यक्रम में राजधानी कॉलेज के शिक्षक राजीव रंजन गिरि का बड़ा योगदान रहा। साथ ही सजप दिल्ली के अध्यक्ष जगनारायण महतो, महामंत्री हरिमोहन जी, वरिष्ठ साथी मदन लाल हिन्द, प्रो बलबीर जैन का भी काफी सहयोग रहा। ■

वरिष्ठ समाजवादी साथी डॉ. स्वाति नहीं रहीं

नई दिल्ली। वरिष्ठ समाजवादी नेता, समाजवादी जन परिषद की वर्तमान उपाध्यक्ष और संस्थापक सदस्य डॉ. स्वाति का शनिवार 2 मई, 2020 को वाराणसी में निधन हो गया। बहत्तर वर्षीय स्वातिजी पिछले दस महीनों से रक्त प्लाज्मा के एक कठिन कैंसर से पीड़ित थी, जिसके कारण उनके गुर्दे भी प्रभावित हुए थे।

स्वातिजी का जन्म मध्यप्रदेश के ग्वालियर के एक मध्यमवर्गीय बंगाली परिवार में 21 अप्रैल 1948 को हुआ था। उनके पिता सत्येंद्रनाथ दत्त एक सिविल इंजीनियर और व्यवसायी थे और माँ पुष्पलता दत्त एक शिक्षित गृहिणी थी। इनके पूर्वज बीसवीं सदी की शुरुआत में पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के फरीदपुर जिले से ग्वालियर आकर बस गए थे। स्वातिजी अपने बचपन से ही बहुत मेधावी छात्रा रहीं और अपनी कक्षा में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1967 में ग्वालियर के कमला राजा महिला महाविद्यालय से बीएससी भौतिक विज्ञान, गोल्ड मेडल सहित उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने प्रतिष्ठित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुम्बई से भौतिकी में एमएससी (1969) किया।

आगे शोध के लिए भारत में पर्याप्त सुविधाओं और प्रोत्साहन के अभाव में स्वातिजी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के जाने-

माने पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। वहां आणविक भौतिकी में महत्वपूर्ण शोध करने के बाद 1975 में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। अगर तब वे चाहतीं तो किसी भी पश्चिमी देश में अनुसंधान और शिक्षण के उच्च पदों पर आसीन हो एक नामी वैज्ञानिक बन सकती थीं, लेकिन अपनी मातृभूमि से लगाव और समाज के लिए कुछ कर गुजरने की आकांक्षा उन्हें वापस भारत खींच लाई।

अस्सी के दशक की शुरुआत में उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के महाविद्यालय में भौतिकी पढ़ाना शुरू किया और तीस साल के ऊर्जावान, सफल कार्यकाल के बाद 2013 में रीडर के पद से सेवानिवृत्त हुईं। हालांकि भारत के अकादमिक जगत में उन्हें यथोचित सम्मान नहीं मिल सका, एक कुशल और प्रेरक अध्यापक के रूप में उन्होंने सैकड़ों छात्राओं के जीवन को दिशा दी। विज्ञान के प्रति भी उनका अनुराग जीवन भर बना रहा और 2005 के बाद एक नए विषय बायो-इंफोमैटिक्स (जैव प्रौद्योगिकी की एक शाखा) में शोध करके उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में इस विभाग की स्थापना में महती भूमिका निभाई।

अमरीका से भारत लौटने पर स्वातिजी का सामना आपातकाल के बाद के उथल पुथल भरे सामाजिक-राजनैतिक परिवेश से हुआ हालांकि विदेश में ही वे समाजवादी विचारों के सम्पर्क में आ चुकी थी। जब समाजवादी नेताओं और चिंतकों, जैसे किशन पटनायक, सच्चिदानंद सिन्हा और अनेक छात्र-युवा कार्यकर्ताओं ने 1980 में समता संगठन की नींव रखी तो स्वातिजी उसमें संस्थापक सदस्य के रूप में शामिल हुई। मुख्यधारा की चालू राजनीति के बरक्स यह शोषित तबकों के संघर्ष के जरिए एक समतामूलक समाज की स्थापना का आंदोलन था। समता संगठन के जरिए डॉ. स्वाति ने उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में अनेक आंदोलनों में भाग लिया। मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में जब बनखेड़ी में कार्यकर्ताओं पर दमन चक्र चला या केसला में सुनील और राजनारायण जैसे साथियों को जेल भेजा गया, स्वातिजी ने अपनी नौकरी से लम्बी छुट्टियां लेकर गांव-गांव घूमकर संगठन को मजबूत किया।

सामयिक वार्ता डॉ. स्वाति के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती है। ■

कर्मठ साथी बालेश्वर राय नहीं रहे

समाजवादी जन परिषद की बिहार इकाई के पूर्व अध्यक्ष बालेश्वर राय का निधन उनके पैतृक गांव नालंदा जिले के एकंगरसराय के एकंगरबिगहा गांव में विगत 21 अप्रैल को हो गया। वह करीब 70-72 वर्ष के थे। बालेश्वर जी समता संगठन की स्थापना के समय से ही संगठन से जुड़े थे और समाजवादी जन परिषद का गठन होने के बाद इसमें सक्रिय रहे। वे नालंदा जिले और बिहार में पार्टी के आधार स्तंभों में थे। 1990 में शिवचंद्र जी के बैढन में आयोजित समता संगठन के सम्मेलन से लौटते एक सड़क दुर्घटना में असामयिक निधन के बाद बिहार में संगठन को उन्होंने मजबूती प्रदान की थी। वह बिहार सजप के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। कई बार वह सजप की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य रहे। अपने पूरे जीवन में वह समाजवाद के प्रतिबद्ध सिपाही बनकर रहे और इसके लिए काम किया।

बालेश्वर जी आर्थिक रूप से बहुत ही परेशानी में रहते थे। कुछ साल पूर्व उनके एकमात्र पुत्र जो वाहन चालक का काम करते थे, का निधन एक सड़क दुर्घटना में हो गया था। उसके बाद से बालेश्वर जी टूट से गए थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी तथा विधवा पुत्रबधु हैं। बालेश्वर जी की आर्थिक हालत बहुत खराब रहती थी और वे पार्टी के कार्यक्रमों में जाने के लिए किराया भी मुश्किल से जुटा पाते थे। बालेश्वर जी पेशे से किसान थे और खेती पर आधारित पशुपालन करते थे। उन्हें कई बार आर्थिक मदद देकर उसके एवज में सजप छोड़ने और बड़ी स्थापित पार्टियों में लाभदायक पद देने का भी प्रलोभन दिया गया था, लेकिन उन्होंने सजप छोड़ने से इनकार कर दिया।

सामयिक वार्ता अपने इस कर्मठ, निष्ठावान साथी और समाजवाद के योद्धा के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

लोहिया का स्मरण मनुष्य मात्र का अर्चन-पूजन है

महादेवी वर्मा

किसी पराधीन देश का समष्टि मानस जब स्वतंत्र होने के लिए आकुल हो जाता है तब उसके मानस- मंथन से ऐसे संस्कृति-व्यक्तित्व उत्पन्न होते हैं, जो क्रांतिद्रष्टा होने के साथ-साथ अग्निदीक्षित भी होते हैं। स्वभावतः उनमें देश की स्वतंत्रता के अतिरिक्त किसी अन्य महत्वाकांक्षा का अंकुर नहीं जम पाता। न उनमें शासन या पदों की इच्छा होती है, न व्यक्तिगत सुख-सुविधा का आकर्षण, कयोंकि उनका समग्र जीवन अपनी धरती को पूजा के फूल की तरह चढ़कर कृतार्थ हो जाता है।

संस्कृति सदा बहुआयामी होती है। वह मानो तराशे हुए हीरे के समान है, जिसकी किसी भी तराश पर किसी भी कोण से आलोक डालने से प्रकाश की किरणें ही विच्छुरित होंगी। मनुष्य के सूक्ष्म अशरीरी स्वप्न से लेकर उसके प्रत्यक्ष लघुतम कर्म तक सब-कुछ संस्कृति की परिधि में आ जाता है। अतः संस्कृति-पुरुष अपने आप में समग्र जीवन का नित्य नवीन बनता गतिशील इतिहास है।

हमारे स्वतंत्रता के संघर्ष में ऐसे अग्निदीक्षित व्यक्तित्व उद्भूत हुए, जिनको हमने केवल राजनीति में सीमित करके ही देखा और उनके अन्य पक्षों को अपने अज्ञान के अंधकार में रहने दिया। डॉ. राममनोहर लोहिया उनमें अन्यतम हैं। उनके युग ने उन्हें केवल राजनीतिक माना और परिणामतः उनके संवेदनशील, चिंतक, विचारक और भारतीय संस्कृति के व्याख्याता रूप को उद्भासित नहीं होने दिया। उनके तिरोधान के इतने वर्ष के उपरांत उनके अनुयायी आत्मीय जन यदि उस भूल का परिमार्जन कर सकें तो उनके प्रति यही सबसे मूल्यवान श्रद्धांजलि होगी। मूर्तियां तो बन सकती हैं, टूट भी सकती हैं, परंतु वे निष्क्रिय ही रहेंगी। मनुष्य के पार्थिव शरीर के न रहने पर उसके कार्य को उसका चिंतन और उसके विचार संचालित करते रहते हैं। इसी में उसकी अमरता निहित है और इसी कारण हम शब्द को ब्रह्म की अक्षर संज्ञा देते हैं।

मैंने उन्हें तब देखा, जब वे नेहरू जी के आमंत्रण पर आनंद भवन में आकर रहे और कांग्रेस के विदेश प्रचार के कार्य का संचालन करने लगे। प्रथम दृष्टि में वे एक अल्हड़ किशोर जैसे लगते थे, पर ध्यान से देखने पर बोध होता था कि हम किसी विशेष व्यक्ति से साक्षात्कार कर रहे हैं, जिसमें शरीर की सीमाओं से परे कुछ और भी है। मझोला कद, दुर्बल देह यष्टि, उज्ज्वल श्याम रंग, सिर पर बिना संवारे अस्त-व्यस्त से खड़े बाल, प्रशस्त ललाट, गोलाई लिए चौड़ा मुख, घनी कुछ दूर-दूर सरल भृकुटियां, बिना बोले ही बोलती हुई सी आंखें, छोटी सुडौल नासिका के नीचे निरंतर हंसते हुए से ओठ, जो देखने वाले को अनायास आत्मीयता की परिधि में खींच लेते थे।

प्रथम दर्शन के उपरांत उनसे मेरा विशेष परिचय विशेष परिस्थिति में हो पाया। उस समय स्वतंत्रता संघर्ष के प्रचार संबंधी कुछ गोपनीय कागज प्र. म. विद्यापीठ में साइक्लोस्टाइल होते थे और उनमें से कुछ कागज विद्यार्थिनियां अपने कपड़े बस्तों में रखकर घर ले जाती थीं, जहां वे बांट दिए जाते थे। यह कार्य प्रायः लीलाधर पर्वतीय (जो सूचना उप-निदेशक के पद से कुछ वर्ष पहले अवकाश प्राप्त कर चुके थे) करते थे और मनोहर दर्जी के छद्म नाम से सिलाई मशीन के साथ आनंद भवन में बैठते थे।

पूर्णिमा बैनर्जी, जिन्हें हम सब नोरा कहते थे और जो आनंद भवन में सबकी आत्मीय स्वतंत्रता सेनानी थीं, अपनी खड़खड़िया कार में लोहिया जी को इधर-उधर ले जाती थीं। उनसे लोहिया जी का विशेष सख्य था। एक दिन कुछ अधिक रात गए आवश्यक कागज लेकर लोहिया जी उनकी कार में आए। नाम बताने पर मैंने फाटक खुलवाया। मुझे देखते ही बोले, 'दीदी, मैं लोहिया हूं।' उत्तर में मैंने हंसते हुए कहा, तो लोहे वालों की दुकान पर जाइए। यह लुहार की भट्टी नहीं है।' फिर हम तीनों ही हंसे और अनायास ऐसा घनिष्ठ संबंध जुड़ गया, जो उनकी पहचान और उनके ज्ञान का परिचय बन गया। मुझसे विशेष संबंध का कारण उनकी वह संवदेनशीलता ही थी, जिसके कारण वे मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों की पीड़ा को भी समझ लेते थे।

राजनीति में संघर्ष के समय मेरा प्रायः सभी व्यक्तियों से परिचय हुआ था, परंतु जब से स्वतंत्र होने के उपरांत शासक हो गए तब मैंने उनसे दूर रहना ही उचित समझा। मैं केवल कवि ही रहना चाहती थी। अतः अपनी अन्य भूमिका को मैंने स्वयं भी भुला दिया और दूसरों को भी भुला देने पर बाध्य कर दिया। पर भाई राममनोहर लोहिया मेरे निकट ही रहे, क्योंकि उनका सच्चा परिचय उनका सांस्कृतिक व्यक्तित्व ही देता था।

इसे मैं दुर्योग ही मानती हूं कि उनके साथियों ने उन्हें राजनीति में निर्वासित कर दिया और उनके बहु-आयामी, संवेदनशील, भावुक, स्वप्नद्रष्टा, सौंदर्योपासक, कोमल करुण पक्षों को अनदेखा करते रहे।

कदाचित तत्कालीन परिवेश में यही संभव और सहज रहा।

बिजली की कौंध ही हमारी आंखें बांध लेती है और तब हम सूर्य की प्रखर किरणों से अगाध समुद्र का तपना, आकाश को ताप से बचाने उसका ऊपर आना, बादल का जलमय तन और इंद्रधनुषी स्वप्न कहां देख पाते हैं।

उनकी करुणा असीम थी। कलकत्ते में जीवित कछुए को काट-काट कर बेचते देखकर वे इतने अस्थिर और दुःखी हुए थे मानो यह निष्ठुरता मनुष्य के साथ हो रही हो। आज ऐसी निष्ठुरता मनुष्य ने मनुष्य के साथ भी की है। लोहिया होते तो उनमें क्या प्रतिक्रिया होती, यह कहा नहीं जा सकता। उनकी करुणा का एक दुर्लभ चित्र प्रायः स्मृति में उभर आता है। एक रात घोंसले से गिरे दो शुक-शावकों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें अपनी मसहरी में बैठाकर वे अपने आप घास पर लेटे रहे थे और सवेरे उन्हें घोंसले में रखकर बालकों के समान प्रसन्न हो उठे थे। घोड़े को पीटने वाले इक्केवान, पत्नी को पीटने वाले मजदूर आदि को दंडित करने की अनेक कथाएं हैं, जिन्हें मेरी स्मृति ने संजो रखा है।

मैं उन्हें चिढ़ाने के लिए कहती थीः भाई राममनोहर, तुम अवतार तो बालखिल्य के हो (ऋषि जो सदा बालक ही रहे) पर तुममें नारद की आत्मा प्रवेश कर गई है। तुम निरंतर कलह करते-कराते घूमते रहते हो। उनके बालखिल्य नाम पर हम सब हंसते थे, परंतु यह जानते थे कि अन्याय देखकर उसका तुरंत प्रतिकार करने की शक्ति उनकी करुणा में निहित है।

करुणा जब सक्रिय होती है तब हमें ऐसे क्रांतिद्रष्टा प्राप्त होते हैं जो इतिहास में एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हैं और मानव-मन की ऋतु ही बदल देते हैं। राष्ट्र की वेदना उनकी जन्मकुंडली बनाती है और क्रांति उनकी कर्म-पत्री लिखती है। ऐसे व्यक्तियों की प्रेरक शक्ति उनकी करुणा ही होती है। यदि गंगा शिव की जटाओं में बैठी रहे तो न पृथ्वी को सींच सकेगी और न अनेक धाराओं को समेट कर समुद्र तक यात्रा कर सकेगी। गंगा नाम में ही जाने का अर्थ है। उसका दूसरा नाम निम्नगा भी है। अर्थात् वह केवल जाती ही नहीं, निम्न स्तरों पर उतरती हुई यात्रा करती है। मानव मानस की करुणा भी गंगा ही की पर्याय है, जो पीड़ित सामान्य जन का स्पर्श कर उसे स्वस्थ करती हुई प्रवाहित होती है।

लोहिया में किसी स्वर्ग या निर्वाण के साधक की निष्क्रिय करुणा न होकर कर्मयोगी की करुणा थी। उनकी भावुकता भी निष्क्रिय नहीं थी। अनेक व्यक्तियों ने चित्रकूट देखा है, किंतु कितने ऐसे दर्शक हैं जो राम और भरत के अद्‌भुत मिलन को मानस चक्षुओं से देखकर भाव-विह्वल होकर कुछ कर सकें। जब लोहिया ने अपने भीतर उस परिस्थिति से तादात्म्य किया तब से भावाकुल होकर आंसू बहाने लगे और परिणाम में रामायण मेले का जन्म हुआ। हम चाहे उस मेले का उचित उपयोग न कर सके, परंतु उनकी राम के प्रति वह अप्रतिम भावांजलि रहेगी। पर इस भावाकुलता के ज्वार ने कभी उनके चिंतन के तटों को भंग नहीं किया। वे हमारे युग के मौलिक चिंतक, विचारक, समाजशास्त्री तथा कर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं।

धर्म के संबंध में उनका कथन है कि धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म। धर्म श्रेयस की उपलब्धि का प्रयत्न करता है और राजनीति बुराई से लड़ती है। यह कथन धर्म और राजनीति को परस्पर पूरक बना देने के साथ-साथ धर्म को रूढ़ियों और अंध-विश्वासों से मुक्त करने की प्रेरणा देता है और राजनीति को अंधकारमद तथा स्वार्थपरता से दूर रखने की दृष्टि देकर दोनों कालखंडों को जोड़ देता है।

उनकी वशिष्ठ, वाल्मीकि, रामायण आदि पर कही गई मौलिक व्याख्याएं पाठक को ऐसे व्याख्याता का परिचय देती हैं, जो आज के वैज्ञानिक युग के संदर्भ में सर्वथा प्रासंगिक निष्कर्ष देने में समर्थ भी है और भारतीय मनीषा के साथ भी है। भारतीय रहकर बदलते हुए विश्व मूल्यों का बोध रखना और उन्हें अपनी युगांतर बोधिनी दृष्टि के आलोक में देखना तथा दिखाना सर्वदा कठिन रहा। ऐसे व्यक्ति या तो विश्व नागरिक होने की महत्वाकांक्षा में भारत के शाश्वत मूल्यों को खो देते हैं या कुछ तत्कालीन परिस्थितियों को भ्रम से भारतीय जीवन के मूल्य मानकर कूपमंडूक रह जाते हैं। लोहिया किसी प्रकार के भ्रम से ग्रस्त नहीं थे, अतः उनकी भारतीयता नवीन युग के आलोक में भी अपनी दीप्ति तथा अपनी पहचान रखती थी।

भारत के तीर्थ, भारत की नदियां, हिमाचल, भारत की संस्कृति, भाषा, भारतीय जन की एकता, भारत का इतिहास लेखन आदि कोई ऐसा आवश्यक विषय नहीं, जिस पर उनकी शोधपरक दृष्टि न गई हो। उनके कथन की विशेषता यह है कि उनका पाठ-पढ़ने के उपरांत एक नवीन दृष्टि पा लेता है। वह अपने राष्ट्र को गिराने वाली प्रवृत्तियों को जान लेता है तथा उसे उदात्त बनाने वाले मूल्यों को भी आत्मसात कर लेता है। यदि वे राजनीति में न आते तो भारत को अच्छा अध्ययनशील शोधकर्ता विद्वान लेखक प्राप्त होता। परंतु संभवतः नियति ने उन्हें ऐसी राजनीति में प्रतिष्ठित किया, जिसमें उन्हें पूर्णतः समझने वाले भी विरल थे।

स्वातंत्रोत्तर काल में राजनीतिक दलों की स्थिति ऐसी विषम हो गई कि उसमें लोहिया मानसिक दृष्टि से आहत होते गए और अंत में वह मूल्यवान जीवन असमय समाप्त हो गया। समय की दूरी जितनी बढ़ती जाती है, हम उनका अभाव उतना ही अधिक अनुभव करते हैं। प्रत्येक अन्याय से संघर्ष के लिए वे अकेले ही एक सेना के समान थे।

स्वातंत्रोत्तर काल में राजनीतिक दलों की स्थिति ऐसी विषम हो गई कि उसमें लोहिया मानसिक दृष्टि से आहत होते गए और अंत में वह मूल्यवान जीवन असमय समाप्त हो गया। समय की दूरी जितनी बढ़ती जाती है, हम उनका अभाव उतना ही अधिक अनुभव करते हैं। प्रत्येक अन्याय से संघर्ष के लिए वे अकेले ही एक सेना के समान थे। वे सदा कहते थे कि वे नास्तिक हैं, परंतु मनुष्य में विश्वास और उसके कल्याण में आस्था रखने वाला परम आस्तिक ही होता है। दबे, पीड़ित, हरिजन, नारी जैसे व्यक्तियों के वे मसीहा थे, जो अपनी पीड़ा की बात कहना भूल चुके थे, उनके मुख में उन्होंने वाणी दी। आज उनका स्मृत्यार्चन भी मनुष्य मात्र का अर्चन-पूजन है, क्योंकि वे इन्हीं में समाकार, सर्वकालिक और अमर हो गए हैं। ■

छींक पर एक बहस

राजेन्द्र राजन

तो आज की चर्चा शुरू करते हैं, दो विशेषज्ञ भी जुड़ गए हैं इस बहस में हमारे साथ।

बहुत-बहुत स्वागत है आप दोनों का।

हां तो सबसे पहले हम जानना चाहेंगे विशेषज्ञ-एक से, कि यह जो खबर आई है कि आज शाम पांच बजे उन्होंने छींका है और शायद पहली बार छींका है, तो आप किस तरह देखते हैं इस घटना को?

देखिए मैं तो कहूंगा कि यह एक ऐतिहासिक छींक है और इस पर देश को गर्व होना चाहिए।

अच्छी बात है, अब विशेषज्ञ-दो, आप बताइए, आप किस तरह देखते हैं इस पूरे मामले को।

इसमें दो राय नहीं कि यह एक ऐतिहासिक छींक है, मगर हमें इतिहास ही नहीं, भविष्य की दृष्टि से भी देखना चाहिए, और भविष्य के मद्देनजर इसका दूरगामी महत्त्व है। मुझे लगता है इस छींक के जरिए उन्होंने कोई बड़ा संदेश देना चाहा है।

लेकिन वह बड़ा संदेश क्या है इस पर विचार करने से पहले हम चलते हैं अपने संवाददाता के पास और जानते हैं वहां इस छींक को लेकर क्या चल रहा है।

हां रोमा, हां, मेरी आवाज आ रही है? अच्छा, क्या खबर है? क्या कहा? उन्होंने नहीं छींका है, किसी माननीय ने छींका है!

माफ कीजिएगा आप लोग, वह खबर सही नहीं थी। उन्होंने नहीं, किसी माननीय ने छींका है। खैर, देखते हैं हमारे विशेषज्ञों की क्या राय है इस पर।

पहले आप बताइए विशेषज्ञ-एक!

देखिए अगर यह सही है कि उन्होंने नहीं, किसी माननीय ने छींका है तो हमें देखना होगा कि किस नियम के तहत छींका है और क्या इसके लिए पहले से नोटिस दिया गया था? और इसमें उनकी पार्टी की क्या भूमिका है?

विशेषज्ञ-दो, आप बताएं आपकी क्या राय है?

देखिए इतना मैं जरूर कहूंगा कि इस तरह सार्वजनिक रूप से छींकना किसी माननीय को शोभा नहीं देता, लेकिन अभी इस मामले में पार्टी की जवाबदेही की बात करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि अभी यह मालूम नहीं है कि छींकने वाले माननीय सत्तापक्ष के थे या विपक्ष के।

तो ठीक है चलिए यही पता करते हैं, चलते हैं अपने संवाददाता के पास।

हां रोमा, कुछ पता चला? छींकने वाले माननीय सत्तापक्ष के थे या विपक्ष के?

क्या कहा, वह उड़ती खबर थी? किसी अधिकारी ने छींका है!

माफ कीजिएगा, किसी माननीय ने नहीं, किसी अधिकारी ने छींका है। देखते हैं हमारे विशेषज्ञ क्या सोचते हैं इस पर।

पहले विशेषज्ञ-एक, आप बताइए।

देखिए किसी अधिकारी ने छींका है तो इस मामले को राजनीतिक नहीं, नौकरशाही के नजरिए से देखना होगा और मैं कहूंगा कि यह घटना हमारी नौकरशाही में आ रही कमजोरी को दर्शाती है और इसे गंभीरता से लेना होगा।

विशेषज्ञ-दो, आप बताइए, आपकी क्या राय है?

देखिए नौकरशाही में आ रही कमजोरी का लक्षण नहीं, यह घटना नौकरशाही में पनप रहे असंतोष का सूचक है। हो सकता है उस अधिकारी ने छींक कर अपना असंतोष जताया हो।

अगर यह असंतोष का लक्षण है तो पता करते हैं दूसरे अधिकारी क्या सोचते हैं इस मामले में।

हां रोमा, और किसी से बात हुई? वे क्या सोचते हैं? क्या कहा?

अधिकारी ने नहीं, किसी सफाईकर्मी ने छींका है! ऑन ड्यूटी? पक्की खबर? हां!

माफ कीजिएगा, आखिरकार सही खबर यह है कि किसी सफाईकर्मी ने छींका है, ऑन ड्यूटी।

विशेषज्ञ-एक, आप बताइए, अब इस मामले को आप किस तरह देखते हैं।

देखिए इस तरह ऑन ड्यूटी छींकना बड़ी ही गैर-जिम्मेदाराना हरकत है, इस पर कड़ी कार्रवाई करने में विलंब नहीं किया जाना चाहिए, ताकि यह संदेश जाए और यह संदेश बहुत जरूरी है कि छींक को लेकर पूरी सतर्कता बरती जाए।

हां, विशेषज्ञ-दो, आप बताएं, आपकी क्या राय है।

मैं विशेषज्ञ-एक की इस बात से सहमत हूं कि कड़ी कार्रवाई की जाए और जल्द से जल्द की जाए, पर साथ में यह सुझाव भी देना चाहूंगा कि सफाईकर्मियों के ऑन ड्यूटी छींकने के बारे में अलग से एक विशेष कानून बनाया जाए।

इस बहस में शामिल होने और अपना कीमती समय देने के लिए आप दोनों का बहुत-बहुत शुक्रिया। कल हम फिर मिलेंगे एक और महत्वपूर्ण मुद्दे पर चर्चा के लिए अपने विशेषज्ञों के साथ।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार प्रसाद सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091 से प्रकाशित और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : अफलातून